संसार में जितनी भी पूजा और ज्ञान प्रचलित है । ये ज्यादातर काल पूजा है । और काल माया के प्रभाव से इसी में सन्तमत यानी सत्यपुरुष का भेद । सतलोक या अमरलोक का भेद । असली हँस ज्ञान । आत्मा का वास्तविक

ज्ञान घुल मिल गया है । इसी स्थिति को साफ़ करने के लिये मैं " **अनुराग सागर** " से वाणी यानी कबीर धर्मदास संवाद को प्रकाशित कर रहा हूँ । मैं अपने सभी पाठकों से कहना चाहूंगा । आपने बहुत पुस्तकें पढी होंगी । एक बार इसको पढें । ये आपकी आंखे खोल देगी ।

फ़िर भी यदि आप एक ही बार में आसानी से इस मायाजाल और भेद को जानना चाहें । तो सरल हिन्दी में लिखी 150 रुपये मूल्य की ये पुस्तक अवश्य पढें । यदि आप इसकी गहरायी समझ गये । तो जीवन का लक्ष्य और दुनियाँ में फ़ैला धार्मिक मकङजाल आपको आसानी से समझ में आ जायेगा । मेरी भाषा में आपके दिमाग में भरा जन्म जन्म का धार्मिक कचरा साफ़ होकर सच्चे प्रभु से लौ लग जायेगी । जो सबका उद्धारकर्ता है ।

प्रस्तुतकर्ता: राजीव कुलश्रेष्ठ

www.dhyansamadhi.org http://searchoftruth-rajeev.blogspot.in/

www.facebook.com/groups/supremebliss/

www.facebook.com/profile.php?id=100006770207556/

विषय सूची

वस्तुकहीं ढ़ूँढेंकहीं, केहीविधि आवै हाथ।
कहैंकबीर तब पाइए, जब भेदी लीजे साथ।।
भेदीलीन्हा साथ कर, दीन्ही वस्तु लखाय।
कोटिजन्म का पंथ था, पल में पहुँचा जाये।।

लेखकीय

संसार में जितनी भी पूजा, ज्ञान प्रचलित है, ये ज्यादातर कालपूजा है, और काल, माया के प्रभाव से, इसी में सन्तमत यानी सत्यपुरूष का भेद, सतलोक या अमरलोक का भेद, असली हंसज्ञान, आत्मा का वास्तविक ज्ञान, घुल-मिल गया है।

आपने बहुत पुस्तकें पढ़ी होंगी। लेकिन एक बार इसको पढ़ें, ये आँखे खोल देगी। यदि इसकी गहरायी समझ गये तो जीवन का लक्ष्य और दुनियाँ में फ़ैला धार्मिक मकङजाल आसानी से समझ में आ जायेगा, और दिमाग में भरा जन्म-जन्म का धार्मिक कचरा साफ़ होकर सच्चे प्रभु से लौ लग जायेगी, जो सबका उद्धारकर्ता है।

अनुरागसागर की कहानी

अनुरागसागर कबीर साहिब और धर्मदास के संवादों पर आधारित महानग्रन्थ है। इसकी शुरूआत में बताया है कि सबसे पहले जब ये सृष्टि नहीं थी। प्रथ्वी, आसमान, सूरज, तारे आदि कुछ भी नहीं था तब केवल परमात्मा ही था।

सिर्फ़ परमात्मा ही शाश्वत है। इसलिये संतमत में और सच्चे जानकार संत परमात्मा के लिये ‘है’ शब्द का प्रयोग करते हैं। उस (परमात्मा) ने कुछ सोचा। (सृष्टि की शुरूआत में उसमें स्वतः एक विचार उत्पन्न हुआ, इससे स्फ़ुरणा (संकुचन जैसा) हुयी)

तब एक शब्द ‘हुं’ प्रकट हुआ।
(जैसे हम आज भी विचारशील होने पर ‘हुं’ करते हैं)
उसने सोचा - मैं कौन हूँ?

इसीलिये हर इंसान आज तक इसी प्रश्न का उत्तर खोज रहा है कि - मैं कौन हूँ?
(उस समय ये पूर्ण था)

उसने एक सुन्दर आनंददायक दीप की रचना की, और उसमें विराजमान हो गया। फिर उसने एक-एक करके एक ही

नाल से सोलह अंश (सुत) प्रकट किये। उनमें पाँचवें अंश कालपुरूष को छोड़कर सभी सुत आनंद को देने वाले थे, और सतपुरूष द्वारा बनाये हंसदीपों में आनंदपूर्वक रहते थे।

लेकिन कालपुरूष सबसे भयंकर और विकराल था। वह अपने भाइयों की तरह हंसदीपों में न जाकर मानसरोवर दीप के निकट चला आया, और सतपुरूष के प्रति घोर तपस्या करने लगा। लगभग चौंसठ युगों तक तपस्या हो जाने पर उसने सतपुरूष के प्रसन्न होने पर तीनलोक स्वर्ग, धरती और पाताल मांग लिए, और फिर से कई युगों तक तपस्या की।

तब सतपुरूष ने अष्टांगी कन्या (आदिशक्ति, आद्या, भगवती आदि) को सृष्टिबीज के साथ कालपुरूष के पास भेजा। (इससे पहले सतपुरूष ने कूर्म नाम के सुत को भेजकर उसकी तपस्या करने की इच्छा की वजह पूछी) अष्टांगीकन्या बेहद सुन्दर और मनमोहक अंगों वाली थी वह कालपुरूष को देखकर भयभीत हो गयी।

कालपुरूष उस पर मोहित हो गया, और उससे रतिक्रिया का आग्रह किया। (यही प्रथम स्त्री-पुरूष का काममिलन था) और दोनों रतिक्रिया में लीन हो गए। रतिक्रिया बहुत लम्बे समय तक चलती रही, और इससे ब्रह्मा, विष्णु, शंकर का जन्म हुआ।

अष्टांगीकन्या उनके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगी पर कालपुरूष की इच्छा कुछ और ही थी? पुत्रों के जन्म के उपरांत कुछ समय बाद कालपुरूष अदृश्य हो गया, और भविष्य के लिए आदिशक्ति को निर्देश दे गया।

तब आदिशक्ति ने अपने अंश से तीन कन्यायें उत्पन्न की, और उन्हें समुद्र में छिपा दिया। फ़िर उसने तीनों पुत्रों को समुद्रमंथन की आज्ञा दी, और समुद्रमंथन के द्वारा प्राप्त हुयी तीनों कन्यायें अपने पुत्रों को दे दी। ये कन्यायें सावित्री, लक्ष्मी, और पार्वती थीं। तीनों पुत्रों ने माँ के कहने पर उन्हें अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार लिया।

आद्याशक्ति ने (कालपुरूष के कहे अनुसार, यह बात कालपुरूष दोबारा कहने आया था, क्योंकि पहले अष्टांगी ने जब पुत्रों को इससे पहले सृष्टिरचना के लिये कहा, तो उन्होंने अनसुना कर दिया) अपने तीनों पुत्रों के साथ सृष्टि की रचना की।

आद्याशक्ति ने खुद अंडज यानी अंडे से पैदा होने वाले जीवों को रचा। ब्रह्मा ने पिंडज यानी पिंड से शरीर से पैदा होने वाले जीवों की रचना की। विष्णु ने उष्मज यानी पानी गर्मी से पैदा होने वाले जीव कीट, पतंगे, जूं आदि की रचना की। शंकर ने स्थावर यानी पेड़, पौधे, पहाड़, पर्वत आदि जीवों की रचना की, और फिर इन सब जीवों को चारखानों वाली चौरासी लाख योनियों में डाल दिया। इनमें मनुष्यशरीर की रचना सर्वोत्तम थी।

इधर ब्रह्मा, विष्णु, शंकर ने अपने पिता कालपुरूष के बारे में जानने की बहुत कोशिश की पर वे सफल न हो सके। क्योंकि वो अदृश्य था, और उसने आद्याशक्ति से कह रखा था कि वो किसी को उसका पता न बताये। फिर वो सब जीवों के अन्दर ‘मन’ के रूप मैं बैठ गया, और जीवों को तरह-तरह की वासनाओं में फ़ंसाने लगा, और समस्त जीव बेहद दुख भोगने लगे।

क्योंकि सतपुरूष ने उसकी क्रूरता देखकर शाप दिया था कि वह एकलाख जीवों को नित्य खायेगा, और सवालाख को उत्पन्न करेगा। समस्त जीव उसके क्रूर व्यवहार से हाहाकार करने लगे, और अपने बनाने वाले को पुकारने

लगे। सतपुरूष को ये जानकर बहुत गुस्सा आया कि काल समस्त जीवों पर बेहद अत्याचार कर रहा है।

(काल जीवों को तप्तशिला पर रखकर पटकता और खाता था)

तब सतपुरूष ने ज्ञानीजी (कबीर साहब) को उसके पास भेजा। कालपुरूष और ज्ञानीजी के बीच काफ़ी झङप हुयी, और कालपुरूष हार गया। तप्तशिला पर तङपते जीवों ने ज्ञानीजी से प्रार्थना की कि वो उसे इसके अत्याचार से बचायें।

ज्ञानीजी ने उन जीवों को सतपुरूष का नाम ध्यान करने को कहा। इस नाम के ध्यान करते ही जीवमुक्त होकर ऊपर (सतलोक) जाने लगे। यह देखकर काल घबरा गया, और उसने ज्ञानीजी से एक समझौता किया कि जो जीव इस परमनाम (वाणी से परे) को सतगुरू से प्राप्त कर लेगा, वह यहाँ से मुक्त हो जायेगा।

ज्ञानीजी ने कहा - मैं स्वयं आकर सभी जीवों को यह नाम दूँगा। नाम के प्रभाव से वे यहाँ से मुक्त होकर आनन्दधाम को चले जायेंगे।

काल ने कहा - मैं और माया (उसकी पत्नी) जीवों को तरह तरह की भोगवासना में फ़ंसा देंगे। जिससे जीव भक्ति भूल जायेगा, और यहीं फ़ंसा रहेगा।

ज्ञानीजी ने कहा - लेकिन उस सतनाम के अंदर जाते ही जीव में ज्ञान का प्रकाश हो जायेगा, और जीव तुम्हारे सभी चाल समझ जायेगा।

कालनिरंजन को चिंता हुयी।

उसने बेहद चालाकी से कहा - मैं जीवों को मुक्ति और उद्धार के नाम पर तरह-तरह के जाति, धर्म, पूजा, पाठ, तीर्थ, व्रत आदि में ऐसा उलझाऊंगा कि वह कभी अपनी असलियत नहीं जान पायेगा। साथ ही मैं तुम्हारे चलाये गये पंथ में भी अपना जाल फ़ैला दूंगा? इस तरह अल्पबुद्धि जीव यही नहीं सोच पायेगा कि सच्चाई आखिर है क्या? मैं तुम्हारे असली नाम में भी अपने नाम मिला दूँगा आदि।

अब क्योंकि समझौता हो गया था। ज्ञानीजी वापस लौट गये।

वास्तव में मनरूप में यह काल ही है, जो हमें तरह-तरह के कर्मजाल में फंसाता है, और फिर नर्क आदि भोगवाता है। लेकिन वास्तव में यह आत्मा सतपुरूष का अंश होने से बहुत शक्तिशाली है। पर भोग वासनाओं में पड़कर इसकी ये दुर्गति हो गई है। इससे छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय सतगुरू की शरण और महामंत्र का ध्यान करना ही है।

प्रस्तुतकर्ता: राजीव कुलश्रेष्ठ

चारगुरू संसार में, धर्मदास बड़े अंश।
मुक्तिराज़ लिख दिन्हिया, अटल बियालीस वंश।

1. सुदर्शन नाम साहेब 2. कुलपति नाम साहेब 3. प्रमोध गुरू 4. केवलनाम साहेब
5. अमोल नाम 6. सुरतस्नेही नाम 7. हक्कनाम 8. पाकनाम 9. प्रगटनाम
10. धीरज नाम 11. उग्रनाम 12. दयानाम 13. ग्रन्धमुनि नाम साहेब
14. प्रकाश मुनिनाम साहेब 15. उदितमुनि नाम साहेब 16. मुकुन्द मुनिनाम
17. अर्धनाम 18. उदयनाम 19. ज्ञाननाम 20. हँसमणि नाम 21. सुकृत नाम
22. अग्रमणि नाम 23. रसनाम 24. गंगमणि नाम 25. पारस नाम
26. जाग्रत नाम 27. भ्रँगमणि नाम 28. अकह नाम 29. कंठमणि नाम
30. संतोषमणि नाम 31. चात्रिक नाम 32. आदिनाम 33. नेहनाम
34. अज्रनाम 35. महानाम 36. निजनाम 37. साहेब नाम 38. उदय नाम
39. करुणा नाम 40. उर्ध्वनाम 41. दीर्घनाम 42. महामणि नाम

कबीर साहब और धर्मदास

कबीर साहब के शिष्य, धनी धर्मदास का जन्म बहुत ही धनी वैश्य परिवार में हुआ था। बाद में कबीर साहब की शरण में आकर उनसे परमात्म-ज्ञान लेकर धर्मदास ने अपना जीवन सार्थक और परिपूर्ण किया इस तरह उन्हें धर्मदास की जगह 'धनी धर्मदास' कहा जाने लगा। धर्मदास वैष्णव थे, और ठाकुर-पूजा किया करते थे। अपनी मूर्तिपूजा के इसी क्रम में धर्मदास मथुरा आये जहाँ उनकी भेंट कबीर साहब से हुयी।

धर्मदास दयालु, व्यवहारी और पवित्र जीवन जीने वाले इंसान थे अत्यधिक धन, संपत्ति के बाद भी अहंकार उन्हें छूआ तक नहीं था। वे अपने हाथों से स्वयं भोजन बनाते, और पवित्रता के लिहाज से जलावन लकड़ी को इस्तेमाल करने से पहले धोया करते थे।

एकबार इसी समय में जब वह मथुरा में भोजन तैयार कर रहे थे। उसी समय कबीर से उनकी भेंट हुयी। उन्होंने देखा कि भोजन बनाने के लिये जो लकड़ियाँ चूल्हे में जल रही थीं उसमें से ढेरों चीटिंयाँ निकलकर बाहर आ रही थी।

धर्मदास ने जल्दी से शेष लकड़ियों को बाहर निकाल कर चीटिंयों को जलने से बचाया। उन्हें बहुत दुख हुआ और वे अत्यन्त व्याकुल हो उठे। लकड़ियों में जलकर मर गयी चीटियों के प्रति उनके मन में बेहद पश्चाताप हुआ।

वे सोचने लगे - आज मुझसे महापाप हुआ है।

अपने इसी दुख की वजह से उन्होंने भोजन भी नहीं खाया। उन्होंने सोचा जिस भोजन के बनने में इतनी चीटियाँ जलकर मर गयी उसे कैसे खा सकता हूँ। उनके हिसाब से वह दूषित भोजन खाने योग्य नहीं था। अतः उन्होंने वह भोजन किसी दीन-हीन साधु, महात्मा आदि को कराने का विचार किया।

वो भोजन लेकर बाहर आये तो उन्होंने देखा कि कबीर एक घने शीतल वृक्ष की छाया में बैठे हुये थे। धर्मदास ने उनसे भोजन के लिये निवेदन किया।

कबीर साहब ने कहा - सेठ धर्मदास, जिस भोजन को बनाते समय हजारों चींटियाँ जलकर मर गयीं उस भोजन को मुझे कराकर ये पाप तुम मेरे ऊपर क्यों लादना चाहते हो। तुम तो रोज ही ठाकुर जी की पूजा करते हो फ़िर उन्हीं भगवान से क्यों नहीं पूछ लिया था कि इन लकङियों के अन्दर क्या है?

धर्मदास को बेहद आश्चर्य हुआ कि इस साधु को ये सब बात कैसे पता चली।
उस समय तो धर्मदास के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब कबीर ने वे चीटिंया भोजन से जिंदा निकलते हुये दिखायीं।

इस रहस्य को वे समझ न सके और उन्होने दुखी होकर कहा - बाबा, यदि मैं भगवान से इस बारे में पूछ सकता तो मुझसे इतना बङा पाप क्यों होता।

धर्मदास को पाप के महाशोक में डूबा देखकर कबीर ने अध्यात्म-ज्ञान के गूढ़ रहस्य बताये। जब धर्मदास ने उनका परिचय पूछा तो कबीर ने अपना नाम सदगुरू कबीर साहब और निवासी अमरलोक बताया।

इसके कुछ देर बाद कबीर अंतर्ध्यान हो गये।

धर्मदास को जब कबीर बहुत दिनों तक नहीं मिले तो वो व्याकुल होकर जगह जगह उन्हें खोजते फ़िरे और उनकी स्थिति पागलों के समान हो गयी।

तब उनकी पत्नी ने सुझाव दिया - तुम ये क्या कर रहे हो उन्हें खोजना बहुत आसान है जैसे कि चींटी, चींटा गुङ को खोजते हुये खुद ही आ जाते हैं।

धर्मदास ने कहा - क्या मतलब?

पत्नी ने कहा - खूब भंडारे कराओ, दान दो। हजारों साधु आयेंगे जब वह साधु तुम्हें दिखे, तो उसे पहचान लेना।

धर्मदास को बात उचित लगी वे ऐसा ही करने लगे।

उन्होंने अपनी सारी संपत्ति खर्च कर दी पर वह साधु (कबीर) नहीं मिला। फिर बहुत समय भटकने के बाद उन्हें कबीर काशी में मिले परन्तु उस समय वे वैष्णव वेश में थे। फ़िर भी धर्मदास ने उन्हें पहचान लिया, और उनके चरणों में गिर पङे।

धर्मदास बोले - सदगुरू महाराज, मुझ पर कृपा करें, और मुझे अपनी शरण में लें।
गुरूदेव मुझ पर प्रसन्न हों मैं उसी समय से आपको खोज रहा हूँ। आज आपके दर्शन हुये।

कबीर बोले - धर्मदास, तुम मुझे कहाँ खोज रहे थे। तुम तो चींटी, चींटों को खोज रहे थे, सो वे तुम्हारे भन्डारे में

आये।

इस पर धर्मदास को अपनी मूर्खता पर बङा पश्चाताप हुआ।

तब उन्हें प्रायश्चित भावना में देख कर कबीर साहब ने फ़िर कहा - लेकिन तुम बहुत भाग्यशाली हो, जो तुमने मुझे पहचान लिया। अब तुम धैर्य धारण करो मैं तुम्हें जीवन के आवागमन से मुक्त कराने वाला मोक्ष-ज्ञान दूँगा।

इसके बाद धर्मदास निवेदन करके कबीर साहब को अपने साथ बाँधोगढ ले आये।
फ़िर तो बाँधोगढ में कबीर के श्रीमुख से अलौकिक आत्मज्ञान सतसंग की अविरल धारा ही बहने लगी। दूर दूर से लोग सतसंग सुनने आने लगे।

धर्मदास और उनकी पत्नी 'आमिन' ने महामंत्र की दीक्षा ली। बाँधोगढ के नरेश भी कबीर के सतसंग में आने लगे, और बाद में दीक्षा लेकर वे भी कबीर साहब के शिष्य बने।

यहाँ कबीर ने बहुत से उपदेश दिये। जिन्हें उनके शिष्यों ने बाँधोगढ नरेश और धनी धर्मदास के आदेश पर संकलित कर ग्रन्थ का रूप दिया।

विशेष - जब भी किसी सच्चेसन्त का प्राकटय होता है तो कालपुरूष भयभीत हो जाता है कि अब ये जीवों को मोक्षज्ञान देकर उनका उद्धार कर देगा। इससे हरसंभव बचाव के लिये वो अपने 'कालदूत' वहाँ भेज देता है।

धर्मदास का पुत्र 'नारायण दास' जो कालदूत था। कबीर का बहुत विरोध करता था लेकिन उसकी एक भी नहीं चली। खुद कबीर के पुत्र के रूप में 'कमाल' कालदूत था वह भी कबीर का बहुत विरोध करता था। बाद में कबीर ने धर्मदास को सुयोग्य शिष्य जानते हुये मोक्ष का अनमोल ज्ञान दिया और साथ ही ये ताकीद भी की।

धर्मदास तोहे लाख दुहाई, सारशब्द बाहिर नहीं जाई।

धर्मदास ने कहा -

सारशब्द बाहिर नहीं जाई, तो हंसा लोक को कैसे जाई?
कबीर साहिब ने कहा - जो अपना होय, तो दियो बतायी।

आदिसृष्टि की रचना

धर्मदास बोले - साहिब, कृपा कर बतायें कि मुक्त होकर अमर हुये लोग कहाँ रहते हैं। मुझे अमरलोक और अन्य दीपों का वर्णन सुनाओ। आदिसृष्टि की रचना, कौन से दीप में सदगुरू के हंसजीवों का वास है, और कौन से दीप में सतपुरूष का निवास है। वहाँ हंसजीव कौन सा तथा कैसा भोजन करते हैं, और वे कौन सी वाणी बोलते हैं।

आदिपुरूष ने लोक कैसे रच रखा है, तथा उन्हें दीप रचने की इच्छा कैसे हुयी। तीनों लोकों की उत्पत्ति कैसे हुयी? साहिब, मुझे वह सब भी बताओ जो गुप्त है।

कालनिरंजन किस विधि से पैदा हुआ, और सोलह सुतों का निर्माण कैसे हुआ। स्थावर, अण्डज, पिण्डज, ऊष्मज इन चार प्रकार की चार खानों वाली सृष्टि का विस्तार कैसे हुआ, और जीव को कैसे काल के वश में डाल दिया गया। कूर्म और शेषनाग उपराजा कैसे उत्पन्न हुये, और कैसे मत्स्य तथा वराह जैसे अवतार हुये। तीन प्रमुख देव ब्रह्मा, विष्णु, महेश किस प्रकार हुये तथा प्रथ्वी, आकाश का निर्माण कैसे हुआ। चन्द्रमा और सूर्य कैसे हुये। कैसे तारों का समूह प्रकट होकर आकाश में ठहर गया, और कैसे चार खानों के जीव शरीर की रचना हुयी? इन सबकी उत्पत्ति के विषय में स्पष्ट बतायें।

कबीर साहब बोले - धर्मदास, मैंने तुम्हें सत्यज्ञान और मोक्ष पाने का सच्चा अधिकारी पाया है इसलिये सत्यज्ञान का जो अनुभव मैंने किया उसके सारशब्द का रहस्य कहकर सुनाया। अब तुम मुझसे आदिसृष्टि की उत्पत्ति सुनो। मैं तुम्हें सबकी उत्पत्ति और प्रलय की बात सुनाता हूँ। यह तत्व की बात सुनो, जब धरती और आकाश और पाताल भी नहीं था जब कूर्म, वराह, शेषनाग, सरस्वती और गणेश भी नहीं थे। जब सबका राजा निरंजनराय भी नहीं था जिसने सबके जीवन को मोहमाया के बंधन में झुलाकर रखा है। तैतीस करोङ देवता भी नहीं थे, और मैं तुम्हें अनेक क्या बताऊँ, तब ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी नहीं थे, और न ही शास्त्र, वेद, पुराण थे, तब ये सब आदिपुरूष में समाये हुये थे। जैसे बरगद के पेङ के बीच में छाया रहती है।

धर्मदास, तुम प्रारम्भ की आदि-उत्पत्ति सुनो जिसे प्रत्यक्षरूप से कोई नहीं जानता, और जिसके पीछे सारी सृष्टि का विस्तार हुआ है। उसके लिये मैं तुम्हें क्या प्रमाण दूँ कि जिसने उसे देखा हो। चारो वेद परमपिता की वास्तविक कहानी नहीं जानते क्योंकि तब वेद का मूल ही (आरम्भ होने का आधार) नहीं था। इसीलिये वेद सत्यपुरूष को ‘अकथनीय’ अर्थात जिसके बारे में कहा न जा सके, ऐसा कहकर पुकारते हैं।

चारो वेद निराकार निरंजन से उत्पन्न हुये हैं, जो कि सृष्टि के उत्पत्ति आदि रहस्य को जानते ही नहीं। इसी कारण पंडित उसका खंडन करते हैं, और असल रहस्य से अनजान वेदमत पर यह सारा संसार चलता है।
सृष्टि के पूर्व जब सत्यपुरूष गुप्त रहते थे। उनसे जिनसे कर्म होता है वे निमित्त कारण और उपादान कारण और करण यानी साधन उत्पन्न नहीं किये थे। उस समय गुप्तरूप से कारण और करण सम्पुटकमल में थे। उसका सम्बन्ध सत्यपुरूष से था ‘विदेह-सत्यपुरूष’ उस कमल में थे।

तब सत्यपुरूष ने स्वयं इच्छा कर अपने अंशों को उत्पन्न किया, और अपने अंशों को देखकर वह बहुत प्रसन्न हुये। सबसे पहले सत्यपुरूष ने ‘शब्द’ का प्रकाश किया, और उससे लोकदीप रचकर उसमें वास किया। फ़िर सत्यपुरूष ने चार-पायों वाले एक सिंहासन की रचना की, और उसके ऊपर ‘पुहुपदीप’ का निर्माण किया।

फिर सत्यपुरूष अपनी समस्त कलाओं को धारण करके उस पर बैठे, और उनसे ‘अगरवासना’ यानी (चन्दन जैसी) एक सुगन्ध प्रकट हुयी। सत्यपुरूष ने अपनी इच्छा से सब कामना की और ‘अठासी हजार’ दीपों की रचना की। उन सभी दीपों में वह चन्दन जैसी सुगन्ध समा गयी, जो बहुत अच्छी लगी।

इसके बाद सत्यपुरूष ने दूसरा शब्द उच्चारित किया। उससे ‘कूर्म’ नाम का सुत (अंश) प्रकट हुआ, और उन्होंने सत्यपुरूष के चरणों में प्रणाम किया। तब उन्होंने तीसरे शब्द का उच्चारण किया उससे ‘ज्ञान’ नाम के सुत हुये जो

सब सुतों में श्रेष्ठ थे। वे सत्यपुरूष के चरणों में शीश नवाकर खडे रहे तब सत्यपुरूष ने उनको एक दीप में रहने की आज्ञा दी। चौथे शब्द के उच्चारण से 'विवेक' नामक सुत हुये, और पाँचवे शब्द से 'काल-निरंजन' प्रकट हुआ।

काल-निरंजन अत्यन्त तेज अंग और भीषणप्रकृति वाला होकर आया। इसी ने अपने उग्र-स्वभाव से सब जीवों को कष्ट दिया है वैसे ये 'जीव' सत्यपुरूष का अंश है। जीव के आदि-अंत को कोई नहीं जानता है।
छठवें शब्द से 'सहज नाम' सुत उत्पन्न हुये। सातवें शब्द से 'संतोष' नाम के सुत हुये जिनको सत्यपुरूष ने उपहार में दीप देकर संतुष्ट किया।

आठवें शब्द से 'सुरति सुभाव' नाम के सुत उत्पन्न हुये उन्हें भी एक दीप दिया गया। नवें से 'आनन्द अपार' नाम के सुत उत्पन्न हुये। दसवें से 'क्षमा' नाम के सुत उत्पन्न हुये। ग्यारहवें से 'निष्काम' और बारहवें से 'जलरंगी' नाम के सुत हुये। तेरहवें से 'अंचित' और चौदहवें से 'प्रेम' नाम के सुत हुये।
पन्द्रहवें से दीनदयाल और सोलहवें से 'धीरज' नाम के विशाल सुत उत्पन्न हुये। सत्रहवें शब्द के उच्चारण से 'योगसंतायन' हुये।

इस तरह 'एक ही नाल' से सत्यपुरूष के शब्द उच्चारण से सोलह सुतों की उत्पत्ति हुयी। सत्यपुरूष के शब्द से ही उन सुतों का आकार का विकास हुआ, और शब्द से ही सभी दीपों का विस्तार हुआ। सत्यपुरूष ने अपने प्रत्येक दिव्यअंग यानी अंश को अमृत का आहार दिया, और प्रत्येक को अलग- अलग दीप का अधिकारी बनाकर बैठा दिया।

सत्यपुरूष के इन अंशों की शोभा और कला अनन्त है, उनके दीपों में मायारहित अलौकिक सुख रहता है। सत्यपुरूष के दिव्यप्रकाश से सभी दीप प्रकाशित हो रहे है। सत्यपुरूष के एक ही रोम का प्रकाश करोडों सूर्य-चन्द्रमा के समान है। सत्यलोक आनन्दधाम है वहाँ पर शोक, मोह आदि दुख नहीं है वहाँ सदैव मुक्तहंसों का विश्राम होता है। सतपुरूष का दर्शन तथा अमृत का पान होता है।

आदिसृष्टि की रचना के बाद जब बहुत दिन ऐसे ही बीत गये तब धर्मराज कालनिरंजन ने क्या तमाशा किया। उस चरित्र को ध्यान से सुनो। निरंजन ने सत्यपुरूष में ध्यान लगाकर एक पैर पर खडे होकर सत्तर युग तक कठिन तपस्या की इससे आदिपुरूष बहुत प्रसन्न हुये।

तब सत्यपुरूष की आवाज 'वाणीरूप' में हुयी - हे धर्मराय, किस हेतु से तुमने यह तपसेवा की?

निरंजन सिर झुकाकर बोला - प्रभु, मुझे वह स्थान दें जहाँ जाकर मैं निवास करूँ।

सत्यपुरूष ने कहा - तुम मानसरोवर दीप में जाओ।

प्रसन्न होकर धर्मराज मानसरोवर दीप की ओर चला गया, और आनन्द से भर गया। मानसरोवर पर निरंजन ने फ़िर से एक पैर पर खडे होकर सत्तर युग तपस्या की तब दयालु सत्यपुरूष के हृदय में दया भर गयी। निरंजन की कठिन सेवा-तपस्या से पुष्पदीप के पुष्प विकसित हो गये, और फ़िर सत्यपुरूष की वाणी प्रकट हुयी। उनके बोलते ही वहाँ सुगन्ध फ़ैल गयी।

सत्यपुरूष ने सहज से कहा - सहज, तुम निरंजन के पास जाओ, और उससे तप का कारण पूछो। निरंजन की सेवा-तपस्या से पहले ही मैंने उसको मानसरोवर दीप दिया है अब वह क्या चाहता है यह ज्ञात कर तुम मुझे बताओ?

सहज निरंजन के पास पहुँचे, और प्रेमभाव से कहा - भाई, अब तुम क्या चाहते हो?

निरंजन प्रसन्न होकर बोला - सहज, तुम मेरे बड़े भाई हो इतना सा स्थान..ये मानसरोवर मुझे अच्छा नहीं लगता अतः मैं किसी बड़े स्थान का स्वामी बनना चाहता हूँ। मुझे ऐसी इच्छा है कि या तो मुझे देवलोक दें, या मुझे एक अलग देश दें।

सहज ने निरंजन की अभिलाषा सत्यपुरूष को जाकर बतायी।

सत्यपुरूष ने स्पष्ट शब्दों में कहा - हम निरंजन की सेवा-तपस्या से संतुष्टि होकर उसको तीनलोक देते हैं। वह उसमें अपनी इच्छा से 'शून्यदेश' बसाये, और वहाँ जाकर सृष्टि की रचना करे। तुम निरंजन से ऐसा जाकर कहो।

निरंजन ने सहज द्वारा ये बात सुनी तो वह बहुत प्रसन्न और आश्चर्यचकित हुआ।

निरंजन बोला - सहज सुनो, मैं किस प्रकार सृष्टिरचना करके उसका विस्तार करूँ? सत्यपुरूष ने मुझे तीनलोक का राज्य दिया है परन्तु मैं सृष्टिरचना का भेद नहीं जानता फ़िर यह कार्य कैसे करूँ।

जो सृष्टि मन, बुद्धि की पहुँच से परे अत्यन्त कठिन और जटिल है, वह मुझे रचनी नहीं आती अतः दया करके मुझे उसकी युक्ति बतायी जाये। तुम मेरी तरफ़ से सत्यपुरूष से यह विनती करो कि मैं किस प्रकार 'नवखण्ड' बनाऊँ? अतः मुझे वह साजसामान दो जिससे जगत की रचना हो सके।

सहज ने यह सब बात जब जाकर सत्यपुरूष से कही।

तब उन्होंने आज्ञा दी - सहज, कूर्म के पेट के अन्दर सृष्टिरचना का सब साज सामान है, उसे लेकर निरंजन अपना कार्य करे। इसके लिये निरंजन कूर्म से विनती करे, और उससे दण्डप्रणाम करके विनयपूर्वक सिर झुकाकर माँगे।

सहज ने सत्यपुरूष की आज्ञा निरंजन को बता दी।

यह सुनते ही निरंजन बहुत हर्षित हुआ, और उसके अन्दर बहुत अभिमान हुआ। वह कूर्म के पास जाकर खड़ा हो गया, और बताये अनुसार दण्डप्रणाम भी नहीं किया। अमृतस्वरूप कूर्म जो सबको सुख देने वाले हैं उनमें क्रोध, अभिमान का भाव जरा भी नहीं है, और अत्यन्त शीतल स्वभाव के हैं। अतः जब कालनिरंजन ने अभिमान करके देखा तो पता चला कि कूर्म अत्यन्त धैर्यवान और बलशाली हैं। बारह पालंग कूर्म का विशाल शरीर है, और छह पालंग बलवान निरंजन का शरीर है।

निरंजन क्रोध करता हुआ कूर्म के चारो ओर दौड़ता रहा, और सोचता रहा कि किस उपाय से इससे उत्पत्ति का सामान लूँ? तब निरंजन बेहद रोष से कूर्म से भिड़ गया, और अपने तीखे नाखूनों से कूर्म के शीश पर आघात

करने लगा।

प्रहार करने से कूर्म के उदर से पवन निकले। उसके शीश के तीन अंश सत, रज, तम गुण निकले आगे जिनके वंश ब्रह्मा, विष्णु, महेश हुये। पाँच-तत्व, धरती, आकाश आदि तथा चन्द्रमा, सूर्य आदि तारों का समूह उसके उदर में थे। उसके आघात से पानी, अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य निकले और प्रथ्वीजगत को ढकने के लिये आकाश निकला फ़िर उसके उदर से प्रथ्वी को उठाने वाले वाराह, शेषनाग और मत्स्य निकले। तब प्रथ्वीसृष्टि का आरम्भ हुआ।

जब कालनिरंजन ने कूर्म का शीश काटा तब उस स्थान से रक्त, जल के स्रोत बहने लगे। जब उनके रक्त में स्वेद यानी पसीना और जल मिला, उससे समुद्र का निर्माण तथा उनंचास कोटि प्रथ्वी का निर्माण हुआ। जैसे दूध पर मलाई ठहर जाती है वैसे ही जल पर प्रथ्वी ठहर गयी।

वाराह के दाँत प्रथ्वी के मूल में रहे पवन प्रचण्ड था, और प्रथ्वी स्थूल थी। आकाश को अंडास्वरूप समझो, और उसके बीच में प्रथ्वी स्थिति है। कूर्म के उदर से 'कूर्मसुत' उत्पन्न हुये, उस पर शेषनाग और वराह का स्थान है। शेषनाग के सिर पर प्रथ्वी है।

निरंजन के चोट करने से कूर्म बरियाया। सृष्टिरचना का सब साजोसामान कूर्म उदर के अंडे में थी, परन्तु वह कूर्म के अंश से अलग थी। आदिकूर्म सत्यलोक के बीच रहता था।

निरंजन के आघात से पीड़ित होकर उसने सत्यपुरूष का ध्यान किया, और शिकायत करते हुये कहा - कालनिरंजन ने मेरे साथ दुष्टता की है उसने मेरे ऊपर बल प्रयोग करते हुये मेरे पेट को फ़ाड़ डाला है। आपकी आज्ञा का उसने पालन नहीं किया।

सत्यपुरूष स्नेह से बोले - कूर्म, वह तुम्हारा छोटा भाई है, और यह रीत है कि छोटे के अवगुणों को भुलाकर उससे स्नेह किया जाय।

सत्यपुरूष के ऐसे वचन सुनकर कूर्म आनन्दित हो गये।

इधर कालनिरंजन ने फ़िर से सत्यपुरुष का ध्यान किया, और अनेक युगों तक उनकी सेवा तपस्या की। निरंजन ने अपने स्वार्थ से तप किया था, अतः सृष्टिरचना को लेकर वह पछताया। तब धर्मराय निरंजन ने विचार किया कि तीनों लोकों का विस्तार कैसे और कहाँ तक किया जाय? उसने स्वर्गलोक, मृत्युलोक और पाताललोक की रचना तो कर दी, परन्तु बिना बीज और जीव के सृष्टि का विस्तार कैसे संभव हो। किस प्रकार और क्या उपाय किया जाय जो जीवों के धारण करने का शरीर बनाकर सजीव सृष्टिरचना हो सके। यह सब तरीका विधि सत्यपुरूष की सेवा तपस्या से ही होगा। ऐसा विचार करके हठपूर्वक एक पैर पर खड़ा होकर उसने चौंसठ युगों तक तपस्या की।

तब दयालु सत्यपुरूष ने सहज से कहा - अब ये तपस्वी निरंजन क्या चाहता है, वह तुम उससे पूछो, और दे दो। उससे कहो, वह हमारे वचन अनुसार सृष्टि निर्माण करे, और छलमत का त्याग करे।

सहज ने निरंजन से जाकर यह सब बात कही।

निरंजन बोला - मुझे वह स्थान दो, जहाँ जाकर मैं बैठ जाऊँ।

सहज बोले - सत्यपुरूष ने पहले ही सब कुछ दे दिया है। कूर्म के उदर से निकले सामान से तुम सृष्टिरचना करो।

निरंजन बोला - मैं कैसे क्या बनाकर रचना करूँ। सत्यपुरूष से मेरी तरफ़ से विनती कर कहो, अपना सारा खेत बीज मुझे दे दें।

सहज ने यह हाल सत्यपुरूष को कह सुनाया।
सत्यपुरूष ने आज्ञा दी, तो सहज अपने सुखासन दीप चले गये।

निरंजन की इच्छा जानकर सत्यपुरूष ने इच्छा व्यक्त की। उनकी इस इच्छा से अष्टांगी नाम की कन्या उत्पन्न हुयी वह कन्या आठ भुजाओं की होकर आयी थी।

वह सत्यपुरूष के बायें अंग जाकर खडी हो गयी, और प्रणाम करते हुये बोली - हे सत्यपुरूष, मुझे क्या आज्ञा है?

सत्यपुरूष बोले - पुत्री, तुम निरंजन के पास जाओ, मैं तुम्हें जो वस्तु देता हूँ, उसे संभाल लो। उससे तुम निरंजन के साथ मिलकर सृष्टिरूपी फ़ुलवारी की रचना करो।

कबीर साहब बोले - धर्मदास, सत्यपुरूष ने अष्टांगीकन्या को जो जीव-बीज दिया उसका नाम 'सोऽहंग' है। इस तरह जीव का नाम सोऽहंग है, जीव ही सोऽहंगम है, दूसरा नहीं है, और वह जीव सत्यपुरूष का अंश है। फ़िर सत्यपुरूष ने तीन शक्तियों को उत्पन्न किया, उनके नाम 'चेतन' 'उलंघिन' और 'अभय' थे।

सत्यपुरूष ने अष्टांगी से कहा कि निरंजन के पास जाकर उसे पहचान कर यह चौरासी लाख जीवों का मूलबीज जीव-बीज दे दो।

अष्टांगीकन्या यह जीव-बीज लेकर मानसरोवर चली गयी।

तब सत्यपुरूष ने सहज को बुलाया, और उससे कहा - तुम निरंजन के पास जाकर यह कहो कि जो वस्तु तुम चाहते थे, वह तुम्हें दे दी गयी है। जीव-बीज 'सोऽहंग' तुम्हें मिल गया है। अब जैसी चाहो, सृष्टिरचना करो, और मानसरोवर में जाकर रहो वहीं से सृष्टि का आरम्भ होना है।

सहज ने निरंजन से जाकर ऐसा ही कहा।

अष्टांगीकन्या और कालनिरंजन

सहज के द्वारा सत्यपुरूष के ऐसे वचन सुनकर निरंजन प्रसन्न होकर अहंकार से भर गया, और मानसरोवर चला आया। फ़िर जब उसने सुन्दर कामिनी 'अष्टांगीकन्या' को आते हुये देखा, तो उसे अति प्रसन्नता हुयी। अष्टांगी का

अनुपमसौंदर्य देखकर निरंजन मुग्ध हो गया उसकी सुन्दरता की कला का अन्त नहीं था। यह देखकर कालनिरंजन बहुत व्याकुल हो गया।

कबीर साहब बोले - धर्मदास, कालनिरंजन की क्रूरता सुनो वह अष्टांगीकन्या को ही निगल गया। जब अन्यायी कालनिरंजन अष्टांगी का ही आहार करने लगा तब उस कन्या को कालनिरंजन के प्रति बहुत आश्चर्य हुआ। जब वह उसे निगल रहा था तो अष्टांगी ने सत्यपुरूष को ध्यान करके पुकारा कि कालनिरंजन ने मेरा आहार कर लिया है। अष्टांगी की पुकार सुनकर सत्यपुरूष ने सोचा कि यह कालनिरंजन तो बहुत क्रूर और अन्यायी है। इस कन्या की तरह ही पहले कूर्म ने ध्यान करके मुझे पुकारा था कि कालनिरंजन ने मेरे तीन शीश खा लिये हैं। सत्यपुरूष, आप मुझ पर दया कीजिये।

कबीर साहब बोले - कालनिरंजन का ऐसा क्रूर चरित्र जानकर सत्यपुरूष ने उसे शाप दिया कि वह प्रतिदिन लाख जीवों को खायेगा, और सवालाख का विस्तार करेगा। फ़िर सत्यपुरूष ने ऐसा भी विचार किया कि इस कालपुरूष को मिटा ही डालें क्योंकि अन्यायी और क्रूर कालनिरंजन बहुत ही कठोर और भयंकर है। यह सभी जीवों का जीवन बहुत दुखी कर देगा।

लेकिन अब वह मिटाने से भी नहीं मिट सकता था, क्योंकि एक ही नाल से वे सब सोलह सुत उत्पन्न हुये थे अतः एक को मिटाने से सभी मिट जायेंगे। और मैंने सबको अलग लोकदीप देकर जो रहने का वचन दिया है वह डांवाडोल हो जायेगा, और मेरी ये सब रचना भी समाप्त हो जायेगी अतः इसको मारना ठीक नहीं है। सत्यपुरूष ने विचार किया कि कालपुरूष को मारने से उनका वचन भंग हो जायेगा अतः अपने वचन का पालन करते हुये उसे न मारकर यह कहता हूँ कि अब वह कभी हमारा दर्शन नहीं पायेगा।

यह कहते हुये सत्यपुरूष ने योगजीत को बुलवाया, और सब हाल कहा कि किस तरह कालनिरंजन ने अष्टांगी कन्या को निगल लिया, और कूर्म के तीन शीश खा लिये।

उन्होंने कहा - योगजीत, तुम शीघ्र मानसरोवर दीप जाओ, और वहाँ से निरंजन को मारकर निकाल दो। वह मानसरोवर में न रहने पाये, और हमारे देश सत्यलोक में कभी न आने पाये। निरंजन के पेट में अष्टांगी नारी है उससे कहो कि वह मेरे वचनों का संभाल कर पालन करे। निरंजन जाकर उसी देश में रहे, जो मैंने पहले उसे दिये हैं अर्थात वह स्वर्गलोक, मृत्युलोक, और पाताल पर अपना राज्य करे। वह अष्टांगी नारी निरंजन का पेट फ़ाड़कर बाहर निकल आये जिससे पेट फ़टने से वह अपने कर्मों का फ़ल पाये। निरंजन से निर्णय करके कह दो कि वह अष्टांगी नारी ही अब तुम्हारी स्त्री होगी।

योगजीत सत्यपुरूष को प्रणाम करके मानसरोवर दीप आये। कालनिरंजन उन्हें वहाँ आया देखकर भयंकर रूप हो गया, और बोला - तुम कौन हो, और किसने तुम्हें यहाँ भेजा है?

योगजीत ने कहा - अरे निरंजन, तुम नारी को ही खा गये अतः सत्यपुरूष ने मुझे आज्ञा दी कि तुम्हें शीघ्र ही यहाँ से निकालूँ।

योगजीत ने निरंजन के पेट में समायी हुयी अष्टांगी से कहा - अष्टांगी, तुम वहाँ क्यों रहती हो। तुम सत्यपुरूष के तेज का सुमिरन करो, और पेट फ़ाड़कर बाहर आ जाओ।

योगजीत की बात सुनकर निरंजन का ह्रदय क्रोध से जलने लगा, और वह योगजीत से भिङ गया। योगजीत ने सत्यपुरूष का ध्यान किया, तो सत्यपुरूष ने आज्ञा दी कि वह निरंजन के माथे के बीच में जोर से घूंसा मारे।

योगजीत ने ऐसा ही किया।

फ़िर योगजीत ने निरंजन की बाँह पकङ कर उसे उठाकर दूर फ़ेंक दिया, तो वह सत्यलोक के मानसरोवर दीप से अलग जाकर दूर गिर पङा। सत्यपुरूष के डर से वह डरता हुआ सँभल सँभलकर उठा। फ़िर अष्टांगीकन्या निरंजन के पेट से निकली वह कालनिरंजन से बहुत भयभीत थी। वह सोचने लगी कि अब मैं वह देश न देख सकूंगी मैं न जाने किस प्रकार यहाँ आकर गिर पङी यह कौन बताये। वह निरंजन से बहुत डरी हुयी थी, और सकपका कर इधर-उधर देखती हुयी निरंजन को शीश नवा रही थी।

तब निरंजन बोला - हे आदिकुमारी सुनो, अब तुम मेरे डर से मत डरो। सत्यपुरूष ने तुम्हें मेरे ‘काम’ के लिये रचा है। हम-तुम दोनों एकमति होकर सृष्टिरचना करें। मैं पुरूष हूँ, और तुम मेरी स्त्री हो अतः तुम मेरी यह बात मान लो।

अष्टांगी बोली - तुम यह कैसी वाणी बोलते हो, मैं तो तुम्हें बङा भाई मानती हूँ। इस प्रकार जानते हुये भी तुम मुझसे ऐसी बातें मत करो। जब से तुमने मुझे पेट में डाल लिया था, और उससे उत्पन्न होने पर अब तो मैं तुम्हारी पुत्री भी हो गयी हूँ। बङे भाई का रिश्ता तो पहले से ही था, अब तो तुम मेरे पिता भी हो गये हो। अब तुम मुझे साफ़ दृष्टि से देखो, नहीं तो तुमसे यह पाप हो जायेगा अतः मुझे विषयवासना की दृष्टि से मत देखो।

निरंजन बोला - भवानी सुनो, मैं तुम्हें सत्य बताकर अपनी पहचान कराता हूँ। पाप, पुण्य के डर से मैं नहीं डरता क्योंकि पाप, पुण्य का मैं ही तो कर्ता (कराने वाला) हूँ। पाप, पुण्य मुझसे ही होंगे, और मेरा हिसाब कोई नहीं लेगा। पाप, पुण्य को मैं ही फ़ैलाऊँगा जो उसमें फ़ँस जायेगा, वही मेरा होगा अतः तुम मेरी इस सीख को मानो। सत्यपुरूष ने मुझे कह, समझा कर तुझे दिया है अतः तुम मेरा कहना मानो।

निरंजन की ऐसी बातें सुनकर अष्टांगी हंसी, और दोनों एकमति होकर एक दूसरे के रंग में रंग गये। अष्टांगी मीठी वाणी से रहस्यमय वचन बोली, और फ़िर उस नीचबुद्धि स्त्री ने विषयभोग की इच्छा प्रकट की। उसके रतिविषयक रहस्यमय वचन सुनकर निरंजन बहुत प्रसन्न हुआ, और उसके भी मन में विषयभोग की इच्छा जाग उठी।

निरंजन और अष्टांगी दोनों परस्पर रतिक्रिया में लग गये। तब कहीं चैतन्यसृष्टि का विशेष आरम्भ हुआ।

धर्मदास, तुम आदिउत्पत्ति का यह भेद सुनो जिसे भ्रमवश कोई नहीं जानता। उन दोनों ने तीन बार रतिक्रिया की जिससे ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश हुये। उनमें ब्रह्मा सबसे बङे, मंझले विष्णु और सबसे छोटे शंकर थे। इस प्रकार अष्टांगी और निरंजन का रतिप्रसंग हुआ। उन दोनों ने एकमति होकर भोगविलास किया तब उससे आदिउत्पत्ति का प्रकाश हुआ।

वेद की उत्पत्ति

कबीर साहब बोले - धर्मदास, विचार करो पीछे ऐसा वर्णन हो चुका है कि अग्नि, पवन, जल, प्रथ्वी और प्रकाश कूर्म के उदर से प्रकट हुये। उसके उदर से ये पाँचो अंश लिये, तथा तीनों सिर काटने से सत, रज, तम तीनों गुण प्राप्त हुये। इस प्रकार पाँच तत्व और तीन गुण प्राप्त होने पर निरंजन ने सृष्टिरचना की। फ़िर अष्टांगी और निरंजन के परस्पर रतिप्रसंग से अष्टांगी को गुण एवं तत्व समान करके दिये, और अपने अंश उत्पन्न किये। इस प्रकार पाँच-तत्व और तीन गुण को देने से उसने संसार की रचना की।

वीर्यशक्ति की पहली बूँद से ब्रह्मा हुये, उन्हें रजोगुण और पाँच तत्व दिये। दूसरी बूँद से विष्णु हुये, उन्हें सतगुण और पाँच तत्व दिये। तीसरी बूँद से शंकर हुये, उन्हें तमोगुण और पाँच तत्व दिये। पाँच तत्व, तीन गुण के मिश्रण से ब्रह्मा, विष्णु, महेश के शरीर की रचना हुयी।
इसी प्रकार सब जीवों के शरीर की रचना हुयी। उससे ये पाँच-तत्व और तीन गुण परिवर्तनशील और विकारी होने से बारबार सृजन-प्रलय यानी जीवन-मरण होता है। सृष्टि की रचना के इस 'आदिरहस्य' को वास्तविक रूप से कोई नहीं जानता।

धर्मदास, कबीर साहब आगे कहने लगे।

निरंजन बोला - अष्टांगी कामिनी, मेरी बात सुन, और जो मैं कहूँ, उसे मान। अब जीव-बीज सोऽहंग तुम्हारे पास है, उसके द्वारा सृष्टिरचना का प्रकाश करो। हे रानी सुन, अब मैं कैसे क्या करूँ। आदिभवानी, ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों पुत्र तुमको सौंप दिये, और अपना मन सत्यपुरूष की सेवा भक्ति में लगा दिया है। तुम इन तीनों बालकों को लेकर राज करो, परन्तु मेरा भेद किसी से न कहना। मेरा दर्शन ये तीनों पुत्र न कर सकेंगे चाहे मुझे खोजते-खोजते अपना जन्म ही क्यों न समाप्त कर दें। सोच-समझकर सब लोगों को ऐसा मत सुदृढ कराना कि सत्यपुरूष का भेद कोई प्राणी जानने न पाये। जब ये तीनों पुत्र बुद्धिमान हो जायें तब उन्हें समुद्रमंथन का ज्ञान देकर समुद्रमंथन के लिये भेजना।

इस तरह निरंजन ने अष्टांगी को बहुत प्रकार से समझाया और फ़िर अपने आप गुप्त हो गया उसने शून्यगुफ़ा में निवास किया। वह जीवों के 'हृदयाकाशरूपी' शून्यगुफ़ा में रहता है तब उसका भेद कौन ले सकता है?
वह गुप्त होकर भी सबके साथ है, जो सबके भीतर है उस मन को ही निरंजन जानो। जीवों के हृदय में रहने वाला यह मन, निरंजन सत्यपुरूष परमात्मा के रहस्यमय ज्ञान के प्रति संदेह उत्पन्न कर उसे मिटाता है। यह अपने मत से सभी को वशीभूत करता है, और स्वयं की बडाई प्रकट करता है। सभी जीवों के हृदय में बसने वाला यह मन, कालनिरंजन का ही रूप है।

सबके साथ रहता हुआ भी ये मन पूर्णतया गुप्त है, और किसी को दिखाई नहीं देता। ये स्वाभाविक रूप से अत्यन्त चंचल है, और सदा सांसारिक विषयों की ओर दौडता है। विषयसुख और भोगप्रवृति के कारण मन को चैन कहाँ है? यह दिन-रात, सोते-जागते अपनी अनन्त इच्छाओं की पूर्ति के लिये भटकता ही रहता है, और मन के वशीभूत होने के कारण ही जीव अशांत और दुखी होता है। इसी कारण उसका पतन होकर जन्म-मरण का बंधन बना है।

जीव का मन ही उसके दुखों, भोगों और जन्म-मरण का कारण है अतः मन को वश में करना ही सभी दुखों और

जन्म-मरण के बँधन से मुक्त होने का उपाय है। जीव तथा उसके ह्रदय के भीतर मन दोनों एक साथ हैं। मतवाला और विषयगामी मन कालनिरंजन के अंग स्पर्श करने से जीव बुद्धिहीन हो गये। इसी से अज्ञानी जीव कर्म, अकर्म के करते रहने से तथा उनका फ़ल भोगते रहने के कारण ही जन्म-जन्मांतर तक उनका उद्धार नहीं हो पाता। यह मन-काल जीव को सताता है। इन्द्रियों को प्रेरित कर विभिन्न पापकर्मों में लगाता है। यह स्वयं पाप, पुण्य के कर्मों की काल कुचाल चलता है, फ़िर जीव को दुखरूपी दण्ड देता है।

उधर जब तीनों बालक ब्रह्मा, विष्णु, महेश सयाने समझदार हुये तो माता अष्टांगी ने उन्हें समुद्र मथने के लिये भेजा लेकिन वे बालक खेलने में मस्त थे अतः समुद्र मथने नहीं गये।

कबीर साहब बोले - धर्मदास, उसी समय एक तमाशा हुआ निरंजनराव ने योग धारण किया। उसने पवन यानी सांस खींचकर पूरक प्राणायाम से आरम्भ कर..पवन ठहरा कर कुम्भक प्राणायाम बहुत देर तक किया। फ़िर जब निरंजन कुम्भक त्याग कर रेचनक्रिया से पवनरहित हुआ तब उसकी सांस के साथ वेद बाहर निकले। वेदउत्पत्ति के इस रहस्य को कोई बिरला विद्वान ही जानेगा।

वेद ने निरंजन की स्तुति की, और कहा - हे निर्गुणनाथ, मुझे क्या आज्ञा है?

निरंजन बोला - तुम जाकर समुद्र में निवास करो तथा जिसका तुमसे भेंट हो, उसके पास चले जाना।

वेद को आज्ञा देते हुये कालनिरंजन की आवाज तो सुनायी दी, पर वेद ने उसका स्थूलरूप नहीं देखा उसने केवल अपना ज्योतिस्वरूप ही दिखाया। उसके तेज से प्रभावित होकर आज्ञानुसार वेद चले गये फ़िर अंत में उस तेज से विष की उत्पत्ति हुयी।

इधर चलते हुये वेद वहाँ जा पहुँचे, जहाँ निरंजन ने समुद्र की रचना की थी। वे सिंधु के मध्य में पहुँच गये। फ़िर निरंजन ने समुद्रमंथन की युक्ति का विचार किया।

त्रिदेव द्वारा प्रथम समुद्रमंथन

तब निरंजन ने गुप्त ध्यान से अष्टांगी को याद करते हुये समझाया, और कहा - बताओ समुद्र मथने में किसलिये देर हो रही है? ब्रह्मा, विष्णु, महेश हमारे तीनों पुत्रों को समुद्र मथने के लिये शीघ्र ही भेजो। मेरे वचन दृढ़ता से मानो, और अष्टांगी इसके बाद तुम स्वयं समुद्र में समा जाना।

तब अष्टांगी ने समुद्रमंथन हेतु विचार किया, और तीनों बालकों को अच्छी तरह समझा-बुझाकर समुद्र मथने के लिये भेजा। उन्हें भेजते समय अष्टांगी ने कहा - समुद्र से तुम्हें अनमोल वस्तुयें प्राप्त होंगी इसलिये तुम जल्दी ही जाओ।

यह सुनकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों बालक चल पड़े, और जाकर समुद्र के पास खड़े हो गये, तथा उसे मथने का उपाय सोचने लगे।

फ़िर तीनों ने समुद्रमंथन किया। तीनों को समुद्र से तीन वस्तुयें प्राप्त हुयीं। ब्रह्मा को वेद, विष्णु को तेज, और शंकर को हलाहल विष की प्राप्ति हुयी। ये तीनों वस्तुयें लेकर वे अपनी माता अष्टांगी के पास आये, और खुशी-खुशी तीनों वस्तुयें दिखायीं।

अष्टांगी ने उन्हें अपनी-अपनी वस्तु अपने पास रखने की आज्ञा दी।

अष्टांगी ने कहा - अब फ़िर से जाकर समुद्र मथो, और जिसको जो प्राप्त हो, वह ले लो।

उसी समय आदिभवानी ने एक चरित्र किया। उसने तीन कन्यायें उत्पन्न की, और अपनी उन अंश को समुद्र में प्रवेश करा दिया। जब इन तीनों कन्याओं को समुद्र में प्रवेश कराने के लिये भेजा, इस रहस्य को अष्टांगी के तीनों पुत्र नहीं जान सके अतः उन्होंने जब समुद्रमंथन किया तो समुद्र से तीन कन्यायें निकलीं। उन्होंने खुशी से तीनों कन्याओं को ले लिया, और अष्टांगी के पास आये।

अष्टांगी ने कहा - पुत्रो, तुम्हारे सब कार्य पूरे हो गये।

अष्टांगी ने उन तीन कन्याओं को तीनों पुत्रों को बाँट दिया। ब्रह्मा को सावित्री, विष्णु को लक्ष्मी और शंकर को पार्वती दी। तीनों भाई कामिनी स्त्री को पाकर बहुत आनन्दित हुये, और उन कामिनियों के साथ काम के वशीभूत होकर उन्होंने देव और दैत्य दोनों प्रकार की संतानें उत्पन्न की।

कबीर साहब बोले - धर्मदास, तुम यह बात समझो कि जो माता थी, वह अब स्त्री हो गयी।

अष्टांगी ने फ़िर से अपने पुत्रों को समुद्र मथने की आज्ञा दी इस बार समुद्र में से चौदह रत्न निकले। उन्होंने रत्न की खान निकाली, और रत्न लेकर माता के पास पहुँचे।

तब अष्टांगी ने कहा - पुत्रो, अब तुम सृष्टिरचना करो।

अण्डज खान की उत्पत्ति स्वयं अष्टांगी ने की। पिण्डज खान को ब्रह्मा ने बनाया। ऊष्मज खान विष्णु तथा स्थावर को शंकर ने बनाया। उन्होंने चौरासी लाख योनियों की रचना की, और उनके अनुसार आधाजल, आधाथल बनाया।

स्थावर खान को एक-तत्व का समझो, और ऊष्मज खान को दो-तत्व।
तीन-तत्वों से अण्डज, और चार-तत्वों से पिण्डज का निर्माण हुआ।
पाँचतत्वों से मनुष्य को बनाया, और तीन गुणों से सजाया संवारा।

इसके बाद ब्रह्मा वेद पढ़ने लगे। वेद पढ़ते हुये ब्रह्मा को निराकार के प्रति अनुराग हुआ क्योंकि वेद कहता है पुरूष एक है, और वह निराकार है, और उसका कोई रूप नहीं है। वह शून्य में ज्योति दिखाता है, परन्तु देखते समय उसकी देह दृष्टि में नहीं आती। उस निराकार का सिर स्वर्ग है, और पैर पाताल है।

इस वेदमत से ब्रह्मा मतवाला हो गया।

ब्रह्मा ने विष्णु से कहा - वेद ने मुझे आदिपुरूष को दिखा दिया है।
फ़िर ऐसा ही उन्होंने शंकर से भी कहा - वेद पढ़ने से पता चलता है कि पुरूष एक है, और सबका स्वामी केवल एक निराकार पुरूष है। यह तो वेद ने बताया परन्तु उसने ऐसा भी कहा कि मैंने उसका भेद नहीं पाया।

ब्रह्मा अष्टांगी के पास आये, और बोले - माता, मुझे वेद ने दिखाया और बताया कि सृष्टि रचना करने वाला, हम सबका स्वामी कोई और ही है अतः हमें बताओ कि तुम्हारा पति कौन है, और हमारा पिता कहाँ है?

अष्टांगी बोली - ब्रह्मा सुनो, मेरे अतिरिक्त तुम्हारा अन्य कोई पिता नहीं है। मुझसे ही सब उत्पत्ति हुयी है, और मैंने ही सबको संभारा है।

ब्रह्मा ने कहा - माता वेद निर्णय करके कहता है कि पुरूष केवल एक है, और वह गुप्त है।

अष्टांगी बोली - पुत्र मुझसे न्यारा सृष्टिरचियता और कोई नहीं है। मैंने ही स्वर्गलोक, प्रथ्वीलोक और पाताललोक बनाये हैं, और सात समुद्रों का निर्माण भी मैंने ही किया है।

ब्रह्मा ने कहा - मैंने तुम्हारी बात मानी कि तुमने ही सब कुछ किया है परन्तु पहले से ही पुरूष को गुप्त कैसे रख लिया? जबकि वेद कहता है कि पुरूष एक है, और वह अलखनिरंजन है। माता तुम कर्ता बनो, आप बनो परन्तु पहले वेदरचना करते समय यह विचार क्यों नहीं किया, और उसमें पुरूष को निरंजन क्यों बताया? अतः अब तुम मेरे से छल न करो, और सच-सच बात बताओ।

कबीर साहब बोले - जब ब्रह्मा ने जिद पकड़ ली तो अष्टांगी ने विचार किया कि ब्रह्मा को किस प्रकार समझाऊँ, जो यह मेरी महिमा को, बड़ाई को नहीं मानता। यह बात निरंजन से कहूँ, तो यह किस प्रकार ठीक से समझेगा? निरंजन ने मुझसे पहले ही कहा था कि मेरा दर्शन कोई नहीं पायेगा। अब ब्रह्मा को अलखनिरंजन के बारे में कुछ नहीं बताया, तो किस प्रकार उसे दिखाया जाये।

ऐसा विचार कर अष्टांगी ने कहा - अलखनिरंजन अपना दर्शन नहीं दिखाता।

ब्रह्मा बोले - माता, तुम मुझे सही-सही स्थान बताओ आगे-पीछे की उल्टी-सीधी बातें करके मुझे न बहलाओ। मैं ये बातें नहीं मानता, और न ही मुझे अच्छी लगती हैं। पहले तुमने मुझे बहकाया कि मैं ही सृष्टिकर्ता हूँ, और मुझसे अलग कुछ भी नहीं है, और अब तुम कहती हो कि 'अलखनिरंजन' तो है, पर वह अपना दर्शन नहीं दिखाता। क्या उसका दर्शन पुत्र भी नहीं पायेगा ऐसी पैदा न होने वाली बात क्यों कहती हो। इसलिये मुझे तुम्हारे कहने पर भरोसा नहीं है अतः इसी समय उस कर्ता का दर्शन करा दीजिये, और मेरे संशय को दूर कीजिये। इसमें जरा भी देर न करो।

अष्टांगी बोली - ब्रह्मा, मैं तुमसे सत्य कहती हूँ कि उस अलखनिरंजन के सात स्वर्ग ही माथा है, और सात पाताल चरण हैं। यदि तुम्हें उसके दर्शन की इच्छा हो, तो हाथ में फ़ूल ले जाकर उसे अर्पित करते हुये प्रणाम करो।

यह सुनकर ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुये।

अष्टांगी ने मन में विचार किया - ब्रह्मा मेरा कहा मानता नहीं है ये कहता है वेद ने मुझे उपदेश किया है कि एक पुरूष निरंजन है परन्तु कोई उसके दर्शन नहीं पाता है अतः वह बोली - अरे बालक सुन, अलखनिरंजन तुम्हारा पिता है, पर तुम उसका दर्शन नहीं पा सकते। यह मैं तुमसे सत्यवचन कहती हूँ।

यह सुनकर ब्रह्मा ने व्याकुल होकर माँ के चरणों में सिर रख दिया, और बोले - मैं पिता का शीश स्पर्श व दर्शन करके तुम्हारे पास आता हूँ।

कहकर ब्रह्मा 'उत्तर दिशा' चले गये।
माता से आज्ञा मांगकर विष्णु भी अपने पिता के दर्शनों हेतु पाताल चले गये।
केवल शंकर का मन इधर-उधर नहीं भटका, वह माता की सेवा करते हुये कुछ नहीं बोले।

ब्रह्मा और गायत्री का अष्टांगी से झूठ बोलना

बहुत दिन बीत गये।

अष्टांगी ने सोचा - मेरे पुत्रों ब्रह्मा और विष्णु ने क्या किया, इसका कुछ पता नहीं लगा। वे अब तक लौटकर क्यों नहीं आये।

तब सबसे पहले विष्णु लौटकर माता के पास आये, और बोले - पाताल में मुझे पिता के चरण तो नहीं मिले उल्टे मेरा शरीर विषज्वाला (शेषनाग के प्रभाव से) से श्यामल हो गया। माता, जब मैं पिता निरंजन के दर्शन नहीं कर पाया, तो मैं व्याकुल हो गया, और फ़िर लौट आया।

अष्टांगी प्रसन्न हो गयी, और विष्णु को दुलारते हुये बोली - पुत्र तुमने निश्चय ही सत्य कहा है।

उधर पिता के दर्शनों के बेहद इच्छुक ब्रह्मा चलते-चलते उस स्थान पर पहुँच गये जहाँ न सूर्य था, न चन्द्रमा, केवल शून्य था। वहाँ ब्रह्मा ने अनेक प्रकार से निरंजन की स्तुति की जहाँ ज्योति का प्रभाव था, वहाँ भी ध्यान लगाया, और ऐसा करते हुये बहुत दिन बीत गये परन्तु ब्रह्मा को निरंजन के दर्शन नहीं हुये।

शून्य में ध्यान करते हुये ब्रह्मा को अब 'चारयुग' बीत गये।

अष्टांगी को चिन्ता हुयी कि मैं ब्रह्मा के बिना किस प्रकार सृष्टिरचना करूँ, और किस प्रकार उसे वापस लाऊँ? तब अष्टांगी ने युक्ति सोचते हुये अपने शरीर में उबटन लगाकर मैल निकाला, और उस मैल से एक पुत्रीरूपी कन्या उत्पन्न की। उस कन्या में दिव्यशक्ति का अंश मिलाया, और कन्या का नाम गायत्री रखा।

गायत्री उन्हें प्रणाम करती हुयी बोली - माता, तुमने मुझे किस कार्य हेतु बनाया है। वह आज्ञा कीजिये।

अष्टांगी बोली - मेरी बात सुनो। ब्रह्मा तुम्हारा बङा भाई है, वह पिता के दर्शन हेतु शून्यआकाश की ओर गया है, उसे बुलाकर लाओ। वह चाहे अपने पिता को खोजते-खोजते सारा जन्म गंवा दे पर उनके दर्शन नही कर पायेगा अतः तुम जिस विधि से चाहो, कोई उपाय करके उसे बुलाकर लाओ।

गायत्री बताये अनुसार ब्रह्मा के पास पहुँची।
उसने देखा, ध्यान में लीन ब्रह्मा अपनी पलक तक नहीं झपकाते थे।

वह कुछ दिन तक सोचती रही कि किस विधि द्वारा ब्रह्मा का ध्यान से ध्यान हटाकर अपनी ओर आकर्षित किया जाय। फ़िर उसने अष्टांगी का ध्यान किया। तब अष्टांगी ने ध्यान में गायत्री को आदेश दिया कि अपने हाथ से ब्रह्मा को स्पर्श करो तब वह ध्यान से जागेंगे।

गायत्री ने ऐसा ही किया, और ब्रह्मा के चरणकमलों का स्पर्श किया।

ब्रह्मा ध्यान से जाग गया, और उसका मन भटक गया। वह व्याकुल होकर बोला - तू कौन पापी अपराधी है, जो मेरी ध्यान समाधि छुङायी। मैं तुझे शाप देता हूँ क्योंकि तूने आकर पिता के दर्शन का मेरा ध्यान खंडित कर दिया।

गायत्री बोली - मुझसे कोई पाप नहीं हुआ है पहले तुम सब बात समझ लो, तब मुझे शाप दो। मैं सत्य कहती हूँ, तुम्हारी माता ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है अतः शीघ्र चलो, तुम्हारे बिना सृष्टि का विस्तार कौन करे।

ब्रह्मा बोले - मैं माता के पास किस प्रकार जाऊँ। अभी मुझे पिता के दर्शन भी नहीं हुये हैं।

गायत्री बोली - तुम पिता के दर्शन कभी नहीं पाओगे अतः शीघ्र चलो वरना पछताओगे।

ब्रह्मा बोला - यदि तुम झूठी गवाही दो कि मैंने पिता का दर्शन पा लिया है, और ऐसा स्वयं तुमने भी अपनी आँखों से देखा है कि पिता निरंजन प्रकट हुये, और ब्रह्मा ने आदर से उनका शीश स्पर्श किया। यदि तुम माता से इस प्रकार कहो, तो मैं तुम्हारे साथ चलूँ।

गायत्री बोली - हे वेद सुनने और धारण करने वाले ब्रह्मा, सुनो, मैं झूठ वचन नहीं बोलूँगी। हाँ यदि मेरे भाई, तुम मेरा स्वार्थ पूरा करो, तो मैं इस प्रकार की झूठ बात कह दूँगी।

ब्रह्मा बोले - मैं तुम्हारी स्वार्थ वाली बात समझा नहीं अतः मुझे स्पष्ट कहो।

गायत्री बोली - यदि तुम मुझे रतिदान दो, यानी मेरे साथ कामक्रीङा करो, तो मैं ऐसा कह सकती हूँ। यह मेरा स्वार्थ है फ़िर भी तुम्हारे लिये परमार्थ जानकर कहती हूँ।

ब्रह्मा विचार करने लगे कि इस समय क्या उचित होगा? यदि मैं इसकी बात नहीं मानता, तो ये गवाही नहीं देगी, और माता मुझे मुझे धिक्कारेगी कि न तो मैंने पिता के दर्शन पाये, और न कोई कार्य सिद्ध हुआ। अतः मैं इसके प्रस्ताव में पाप को विचारता हूँ, तो मेरा काम नहीं बनता। इसलिये रतिदान देने की इसकी इच्छा पूरी करनी ही

चाहिये।

ऐसा ही निर्णय करते हुये ब्रह्मा और गायत्री ने मिलकर विषयभोग किया। उन दोनों पर रतिसुख का रंग प्रभाव दिखाने लगा। ब्रह्मा के मन में पिता को देखने की जो इच्छा थी उसे वह भूल गया, और दोनों के हृदय में कामविषय की उमंग बढ़ गयी।

फ़िर दोनों ने मिलकर छलपूर्ण बुद्धि बनायी। तब ब्रह्मा ने कहा - चलो माता के पास चलते हैं।

गायत्री बोली - एक उपाय और करो, जो मैंने सोचा है। वह युक्ति है कि एक दूसरा गवाह भी तैयार कर लेते हैं।

ब्रह्मा बोले - यह तो बहुत अच्छी बात है। तुम वही करो, जिस पर माता विश्वास करे।

तब गायत्री ने साक्षी उत्पन्न करने हेतु अपने शरीर से मैल निकाला, और उसमें अपना अंश मिलाकर एक कन्या बनायी। ब्रह्मा ने उस कन्या का नाम सावित्री रखवाया। तब गायत्री ने सावित्री को समझाया कि तुम चलकर माता से कहना कि ब्रह्मा ने पिता का दर्शन पाया है।

सावित्री बोली - जो तुम कह रही हो, उसे मैं नहीं जानती, और झूठी गवाही देने में तो बहुत हानि है।

ब्रह्मा और गायत्री को बहुत चिंता हुयी। उन्होंने सावित्री को अनेक प्रकार से समझाया पर वह तैयार नहीं हुयी।

तब सावित्री अपने मन की बात बोली - यदि ब्रह्मा मुझसे रतिप्रसंग करे, तो मैं ऐसा कर सकती हूँ।

तब गायत्री ने ब्रह्मा को समझाया कि सावित्री को रतिदान देकर अपना काम बनाओ। ब्रह्मा ने सावित्री को रतिदान दिया, और बहुत भारी पाप अपने सिर ले लिया। सावित्री का दूसरा नाम बदल कर पुहुपावती कहकर अपनी बात सुनाते हैं।

ये तीनों मिलकर वहाँ गये, जहाँ कन्या आदिकुमारी अष्टांगी थी।

तीनों के प्रणाम करने पर अष्टांगी ने पूछा - ब्रह्मा, क्या तुमने अपने पिता के दर्शन पाये, और यह दूसरी स्त्री कहाँ से लाये?

ब्रह्मा बोले - माता, ये दोनों साक्षी है कि मैंने पिता के दर्शन पाये। इन दोनों के सामने मैंने पिता का शीश स्पर्श किया है।

अष्टांगी बोली - गायत्री, विचार करके कहो कि तुमने अपनी आँखों से क्या देखा है? सत्य बताओ ब्रह्मा ने अपने पिता का दर्शन पाया, और इस दर्शन का उस पर क्या प्रभाव पड़ा?

गायत्री बोली - ब्रह्मा ने पिता के शीश का दर्शन पाया है ऐसा मैंने अपनी आँखों से देखा है कि ब्रह्मा अपने पिता निरंजन से मिले। माता यह सत्य है, ब्रह्मा ने अपने पिता पर फ़ूल चढ़ाये, और उन्हीं फ़ूलों से यह पुहुपावती उस

स्थान से प्रकट हुयी। इसने भी पिता का दर्शन पाया है आप इससे पूछ के देखिये इसमें रत्ती भर भी झूठ नहीं है।

अष्टांगी बोली - पुहुपावती, मुझसे सत्य कहो, और बताओ क्या ब्रह्मा ने पिता के सिर पर पुष्प चढ़ाया।

पुहुपावती ने कहा - माता मैं सत्य कहती हूँ। चतुर्मुख ब्रह्मा ने पिता के शीश के दर्शन किये, और शांत एवं स्थिर मन से फ़ूल चढ़ाये।

इस झूठी गवाही को सुनकर अष्टांगी परेशान हो गयी, और विचार करने लगी।

अष्टांगी का ब्रह्मा और पुहुपावती को शाप देना

अष्टांगी को बेहद आश्चर्य हुआ कि ब्रह्मा ने निरंजन के दर्शन पा लिये हैं जबकि अलखनिरंजन ने प्रतिज्ञा कर रखी है कि उसे कोई आँखों से देख नहीं पायेगा। फ़िर ये तीनों लबारी झूठे-कपटी कैसे कहते हैं कि उन्होंने निरंजन को देखा है।

उसी क्षण अष्टांगी ने निरंजन का ध्यान किया, और बोली - मुझे सत्य बताओ।

निरंजन ने कहा - ब्रह्मा ने मेरा दर्शन नहीं पाया उसने तुम्हारे पास आकर झूठी गवाही दिलवायी। उन तीनों ने झूठ बनाकर सब कहा है, वह सब मत मानो, वह झूठ है।

अष्टांगी को बहुत क्रोध आया। उसने ब्रह्मा को शाप दिया - तुमने मुझसे आकर झूठ बोला अतः कोई तुम्हारी पूजा नहीं करेगा। एक तो तुम झूठ बोले, और दूसरे तुमने न करने योग्य कर्म (दुष्कर्म) करके बहुत बङा पाप अपने सिर ले लिया। आगे जो भी तुम्हारी शाखा संतति होगी, वह बहुत झूठ और पाप करेगी। तुम्हारी संतति (ब्रह्मा के वंश अथवा ब्रह्मा के नाम से पुकारे जाने वाले ब्राहमण) प्रकट में तो बहुत नियम, धर्म, व्रत, उपवास, पूजा, शुचि आदि करेंगे परन्तु उनके मन में भीतर पाप मैल का विस्तार रहेगा। तुम्हारी वे संतान विष्णुभक्तों से अहंकार करेंगी, इसलिये नर्क को प्राप्त होंगी। तुम्हारे वंश वाले पुराणों की धर्मकथाओं को लोगों को समझायेंगे परन्तु स्वयं उसका आचरण न करके दुख पायेंगे।

उनसे जो और लोग ज्ञान की बात सुनेंगे उसके अनुसार वे भक्ति कर सत्य को बतायेंगे। ब्राहमण परमात्मा का ज्ञान, भक्ति को छोङकर दूसरे देवताओं को ईश्वर का अंश बताकर उनकी भक्ति-पूजा करायेंगे, औरों की निंदा करके विकराल काल के मुँह में जायेंगे। अनेक देवी-देवताओं की बहुत प्रकार से पूजा करके यजमानों से दक्षिणा लेंगे, और दक्षिणा के कारण पशुबलि में पशुओं का गला कटवायेंगे, दक्षिणा के लालच में यजमानों को बेबकूफ़ बनायेंगे।

वे जिसको शिष्य बनायेंगे, उसे भी परमार्थ, कल्याण का रास्ता नहीं दिखायेंगे। परमार्थ के तो वे पास भी नहीं जायेंगे, परन्तु स्वार्थ के लिये वे सबको अपनी बात समझायेंगे। स्वार्थी होकर सबको अपनी स्वार्थसिद्ध का ज्ञान सुनायेंगे, और संसार में अपनी सेवा-पूजा मजबूत करेंगे। अपने को ऊँचा और औरों को छोटा कहेंगे। इस प्रकार

ब्रह्मा, तेरे वंशज तेरे ही जैसे झूठे और कपटी होंगे।

शाप सुनकर ब्रह्मा मूर्छित होकर गिर पडे।

फ़िर अष्टांगी ने गायत्री को शाप दिया - गायत्री ब्रह्मा के साथ कामभावना से हो जाने से मनुष्यजन्म में तेरे पाँच पति होंगे तेरे गायरूपी शरीर में बैल पति होंगे, और वे सात-पाँच से भी अधिक होंगे। पशुयोनि में तू गाय बनकर जन्म लेगी, और न खाने योग्य पदार्थ खायेगी। तुमने अपने स्वार्थ के लिये मुझसे झूठ बोला, और झूठे वचन कहे। क्या सोचकर तुमने झूठी गवाही दी?

गायत्री ने गलती मानकर शाप स्वीकार कर लिया।

फिर अष्टांगी ने सावित्री को देखा, और बोली - तुमने नाम तो सुन्दर पुहुपावती रखवा लिया परन्तु झूठ बोलकर तुमने अपने जन्म का नाश कर लिया। सुन, तुम्हारे विश्वास पर तुमसे कोई आशा रखकर कोई तुम्हें नहीं पूजेगा। दुर्गंध के स्थान पर तुम्हारा वास होगा। कामविषय की आशा लेकर अब नर्क की यातना भोगो। जानबूझ कर जो तुम्हें सींचकर लगायेगा, उसके वंश की हानि होगी। अब तुम जाओ और वृक्ष बनकर जन्मों। तुम्हारा नाम केवड़ा, केतकी होगा।

कबीर बोले - अष्टांगी के शाप के कारण ब्रह्मा, गायत्री और सावित्री तीनों बहुत दुखी हो गये। अपने पापकर्म से वे बुद्धिहीन और दुर्बल हो गये। कामविषय में प्रवृत कराने वाली कामिनी स्त्री कालरूप-काम (वासना की इच्छा) की अतितीव्र कला है, इसने सबको अपने शरीर के सुन्दर चर्म से डसा है। शंकर, ब्रह्मा, सनकादि और नारद जैसे कोई भी इससे बच नहीं पाये।

कोई बिरला सन्त-साधक बच पाता है जो सदगुरू के सत्यशब्दों को भली प्रकार अपनाता है। सदगुरू के शब्दप्रताप से ये कालकला मनुष्य को नहीं व्यापती अर्थात कोई हानि नहीं करती। जो कल्याण की इच्छा रखने वाला भक्त मन, वचन, कर्म से सतगुरू के श्रीचरणों की शरण ग्रहण करता है, पाप उसके पास नहीं आता।

कबीर साहब आगे बोले - ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों को शाप देने के बाद अष्टांगी मन में पछताने लगी। उसने सोचा, शाप देते समय मुझे बिलकुल दया नहीं आयी, अब न जाने निरंजन मेरे साथ कैसा व्यवहार करेगा?

उसी समय आकाशवाणी हुयी - भवानी, तुमने यह क्या किया। मैंने तो तुम्हें सृष्टिरचना के लिये भेजा था, परन्तु तुमने शाप देकर यह कैसा चरित्र किया? हे भवानी, ऊँचा और बलवान ही निर्बल को सताता है, और यह निश्चित है कि वह इसके बदले दुख पाता है। इसलिये जब द्वापर युग आयेगा, तब तुम्हारे भी पाँच पति होंगे।

भवानी ने अपने शाप के बदले निरंजन का शाप सुना तो मन में सोच विचार किया पर मुँह से कुछ न बोली। वह सोचने लगी - मैंने बदले में शाप पाया। निरंजन मैं तो तेरे वश में हूँ, जैसा चाहो, व्यवहार करो।

फ़िर अष्टांगी ने विष्णु को दुलारते हुये कहा - पुत्र, तुम मेरी बात सुनो। सच-सच बताओ, जब तुम पिता के चरण स्पर्श करने गये, तब क्या हुआ? पहले तो तुम्हारा शरीर गोरा था, तुम श्याम रंग कैसे हो गये?

विष्णु ने कहा - पिता के दर्शन हेतु जब मैं पाताललोक पहुँचा तो शेषनाग के पास पहुँच गया। वहाँ उसके विष के तेज से मैं सुस्त (अचेत) हो गया। मेरे शरीर में उसके विष का तेज समा गया, जिससे वह श्याम हो गया।

तब एक आवाज हुयी - विष्णु, तुम माता के पास लौट जाओ। यह मेरा सत्यवचन है कि जैसे ही सतयुग, त्रेतायुग बीत जायेंगे, तब द्वापर में तुम्हारा कृष्णअवतार होगा। उस समय तुम शेषनाग से अपना बदला लोगे, तब तुम यमुना नदी पर जाकर नाग का मानमर्दन करोगे। यह मेरा नियम है कि जो भी ऊँचा नीचे वाले को सताता है, उसका बदला वह मुझसे पाता है। जो जीव दूसरे को दुख देता है, उसे मैं दुख देता हूँ।

हे माता, उस आवाज को सुनकर मैं तुम्हारे पास आ गया। यही सत्य है कि मुझे पिता के श्रीचरण नहीं मिले।

भवानी यह सुनकर प्रसन्न हो गयी, और बोली - पुत्र सुनो, मैं तुम्हें तुम्हारे पिता से मिलाती हूँ, और तुम्हारे मन का भ्रम मिटाती हूँ। पहले तुम बाहर की स्थूलदृष्टि (शरीर की आँखें) छोड़कर, भीतर की ज्ञानदृष्टि (अन्तर की आँख, तीसरी आँख) से देखो, और अपने हृदय में मेरा वचन परखो।

स्थूलदेह के भीतर, सूक्ष्ममन के स्वरूप को ही, कर्ता समझो। मन के अलावा दूसरा और किसी को कर्ता न मानो। यह मन बहुत ही चंचल और गतिशील है। क्षण भर में स्वर्ग, पाताल की दौड़ लगाता है, और स्वच्छन्द होकर सब ओर विचरता है। मन एक क्षण में अनन्तकला दिखाता है, और इस मन को कोई नहीं देख पाता। मन को ही निराकार कहो। मन के ही सहारे दिन-रात रहो।

हे विष्णु, बाहरी दुनियाँ से ध्यान हटाकर अंतर्मुखी हो जाओ, अपनी सुरति और दृष्टि को पलट कर भृकुटि मध्य (भौंहों के बीच आज्ञाचक्र) पर या हृदय के शून्य में ज्योति को देखो, जहाँ ज्योति झिलमिल झालर सी प्रकाशित होती है।

विष्णु ने अपनी स्वांस को घुमाकर भीतर आकाश की ओर दौड़ाया, और (अंतर) आकाशमार्ग में ध्यान लगाया। हृदयगुफ़ा में प्रवेश कर ध्यान लगाया। ध्यान प्रकिया में विष्णु ने पहले स्वांस का संयम प्राणायाम से किया। कुम्भक में जब उन्होंने स्वांस को रोका तो प्राण ऊपर उठकर ध्यान के केन्द्र शून्य में आया। वहाँ विष्णु को 'अनहद-नाद' की गर्जना सुनाई दी। यह अनहद बाजा सुनते हुये विष्णु प्रसन्न हो गये। तब मन ने उन्हें सफ़ेद, लाल, काला, पीला आदि रंगीन प्रकाश दिखाया। धर्मदास, इसके बाद विष्णु को, मन ने अपने आपको दिखाया, और 'ज्योतिप्रकाश' किया।

जिसे देखकर वह प्रसन्न हो गये, और बोले - हे माता, आपकी कृपा से आज मैंने ईश्वर को देखा।

धर्मदास अचानक चौंककर बोले - सदगुरू, यह सुनकर मेरे भीतर एक भ्रम उत्पन्न हुआ है। अष्टांगीकन्या ने जो 'मन का ध्यान' बताया इससे तो समस्त जीव भरमा गये हैं यानी भ्रम में पड़ गये हैं?

कबीर बोले - धर्मदास, यह कालनिरंजन का स्वभाव ही है कि इसके चक्कर में पड़ने से विष्णु सत्यपुरूष का भेद नहीं जान पाये। (निरंजन ने अष्टांगी को पहले ही सचेत कर आदेश दे दिया था कि सत्यपुरूष का कोई भेद जानने न पाये, ऐसी माया फ़ैलाना) अब उस कामिनी अष्टांगी की यह चाल देखो कि उसने अमृतस्वरूप सत्यपुरूष को छुपाकर विषरूप कालनिरंजन को दिखाया। जिस 'ज्योति' का ध्यान अष्टांगी ने बताया, उस ज्योति से कालनिरंजन

को दूसरा न समझो।

धर्मदास, अब तुम यह विलक्षण गूढ़ सत्य सुनो। ज्योति का जैसा प्रकटरूप होता है, वैसा ही गुप्तरूप भी है। (दिये, मोमबत्ती आदि की ज्योति, लौ) जो ह्रदय के भीतर है, वह ही बाहर देखने में भी आता है। जब मनुष्य दीपक जलाता है, तो उस ज्योति के भाव-स्वभाव को देखो, और निर्णय करो। ज्योति को देखकर पतंगा बहुत खुश होता है, और प्रेमवश अपना भला जानकर उसके पास आता है लेकिन ज्योति को स्पर्श करते ही पतंगा भस्म हो जाता है। इस प्रकार अज्ञानता में मतवाला हुआ वह पतंगा उसमें जल मरता है।

ज्योतिस्वरूप कालनिरंजन भी ऐसा ही है जो भी जीवात्मा उसके चक्कर में आ जाता है, क्रूरकाल उसे छोड़ता नहीं। इस काल ने करोड़ों विष्णु अवतारों को खाया, और अनेकों ब्रह्मा, शंकर को खाया तथा अपने इशारे पर नचाया। काल द्वारा दिये जाने वाले जीवों के कौन-कौन से दुख को कहूँ? वह लाखों जीव नित्य ही खाता है। ऐसा वह भयंकर काल निर्दयी है।

धर्मदास बोले - मेरे मन में संशय है। अष्टांगी को सत्यपुरूष ने उत्पन्न किया था, और जिस प्रकार उत्पन्न किया, वह सब कथा मैंने जानी। कालनिरंजन ने उसे भी खा लिया फ़िर वह सत्यपुरूष के प्रताप से बाहर आयी। फ़िर उस अष्टांगी ने ऐसा धोखा क्यों किया कि कालनिरंजन को तो प्रकट किया, और सत्यपुरूष का भेद गुप्त रखा? यहाँ तक कि सत्यपुरूष का भेद उसने ब्रह्मा, विष्णु, महेश को भी नहीं बताया, और उनसे भी कालनिरंजन का ध्यान कराया। अष्टांगी ने कैसा चरित्र किया कि सत्यपुरूष को छोड़कर कालनिरंजन की साथी हो गयी अर्थात जिन सत्यपुरूष का वह अंश थी, उसका ध्यान क्यों नहीं कराया?

कबीर साहब बोले - धर्मदास, नारी का स्वभाव तुम्हें बताता हूँ। जिसके घर में पुत्री होती है, वह अनेक जतन करके उसे पालता-पोसता है। पहनने को वस्त्र, खाने को भोजन, सोने को शैय्या, रहने को घर आदि सब सुख देता है, और घर-बाहर सब जगह उस पर विश्वास करता है। उसके माता-पिता उसके हित में यज्ञ आदि करा के विवाह करते हुये विधिपूर्वक उसे विदा करते हैं। माता-पिता के घर से विदा होकर वह अपने पति के घर आ जाती है, तो उसके साथ सब गुणों में होकर प्रेम में इतनी मग्न हो जाती है कि अपने माता-पिता सबको भुला देती है।

धर्मदास, नारी का यही स्वभाव है, इसलिये नारी स्वभाववश अष्टांगी भी पराये स्वभाव वाली ही हो गयी। वह कालनिरंजन के साथ होकर उसी की होकर रह गयी, और उसी के रंग में रंग गयी। इसीलिये उसने सत्यपुरूष का भेद प्रकट नहीं किया, और विष्णु को कालनिरंजन का ही रूप दिखाया।

काल-निरंजन का धोखा

धर्मदास बोले - यह रहस्य तो मैंने जान लिया अब आगे का रहस्य बताओ। आगे क्या हुआ?

कबीर साहब बोले - अष्टांगी ने विष्णु को प्यार किया, और कहा, ब्रह्मा ने तो व्यभिचार और झूठ से अपनी मानमर्यादा खो दी। विष्णु, अब सब देवताओं में तुम्हीं ईश्वर होगे। सब देवता तुम्ही को श्रेष्ठ मानेंगे, और तुम्हारी पूजा करेंगे। जिसकी इच्छा तुम मन में करोगे, वह कार्य मैं पूरा करूँगी।

फ़िर अष्टांगी शंकर के पास गयी, और बोली - शिव, तुम मुझसे अपने मन की बात कहो, तुम जो चाहते हो, वह मुझसे मांगो। अपने दोनों पुत्रों को तो मैंने उनके कर्मानुसार दे दिया है।

शंकर ने हाथ जोङकर कहा - माता, जैसा तुमने कहा, वह मुझे दीजिये। मेरा यह शरीर कभी नष्ट न हो, ऐसा वर दीजिये।

अष्टांगी ने कहा - ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि 'आदिपुरूष' के अलावा कोई दूसरा अमर नहीं हुआ। तुम प्रेमपूर्वक प्राण, पवन का योगसंयम करके योगतप करो तो चार-युग तक तुम्हारी देह बनी रहेगी। तब जहाँ तक प्रथ्वी आकाश होगा, तुम्हारी देह कभी नष्ट नहीं होगी।

विष्णु और महेश ऐसा वर पाकर बहुत प्रसन्न हुये पर ब्रह्मा बहुत उदास हुये।

तब ब्रह्मा विष्णु के पास पहुँचे, और बोले - भाई, माता के वरदान से तुम देवताओं में प्रमुख और श्रेष्ठ हो, माता तुम पर दयालु हुयी, पर मैं उदास हूँ। अब मैं माता को क्या दोष दूँ, यह सब मेरी ही करनी का फ़ल है। तुम कोई ऐसा उपाय करो, जिससे मेरा वंश भी चले, और माता का शाप भी भंग न हो।

विष्णु बोले - ब्रह्मा, तुम मन का भय और दुख त्याग दो कि माता ने मुझे श्रेष्ठ पद दिया है, मैं सदा तुम्हारे साथ तुम्हारी सेवा करूँगा। तुम बङे और मैं छोटा हूँ अतः तुम्हारा मान-सम्मान बराबर करूँगा। जो कोई मेरा भक्त होगा, वह तुम्हारे भी वंश की सेवा करेगा।

भाई, मैं संसार में ऐसा मत-विश्वास बना दूँगा कि जो कोई पुण्यफ़ल की आशा करता हो, और उसके लिये वह जो भी यज्ञ, धर्म, पूजा, व्रत आदि जो भी कार्य करता हो वह बिना ब्राह्मण के नहीं होंगे। जो ब्राह्मणों की सेवा करेगा, उस पर महापुण्य का प्रभाव होगा। वह जीव मुझे बहुत प्यारा होगा, और मैं उसे अपने समान बैकुंठ में रखूँगा।

यह सुनकर ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुये। विष्णु ने उनके मन की चिंता मिटा दी।

ब्रह्मा ने कहा - मेरी भी यही चाह थी कि मेरा वंश सुखी हो।

कबीर साहब बोले - धर्मदास, कालनिरंजन के फ़ैलाये जाल का विस्तार देखो। उसने खानी, वाणी के मोह से मोहित कर सारे संसार को ठग लिया, और सब इसके चक्कर में पङकर अपने आप ही इसके बंधन में बँध गये तथा परमात्मा को, स्वयं को, अपने कल्याण को भूल ही गये। यह कालनिरंजन विभिन्न सुख भोग आदि तथा स्वर्ग आदि का लालच देकर सब जीवों को भरमाता है, और उनसे भांति-भांति के कर्म करवाता है। फ़िर उन्हें जन्म-मरण के झूले में झुलाता हुआ बहुभांति कष्ट देता है।

खानी बँधन - स्त्री-पति, पुत्र-पुत्री, परिवार, धन-संपत्ति आदि को ही सब कुछ मानना, खानी बँधन है।

वाणी बंधन - भूत-प्रेत, स्वर्ग-नर्क, मान-अपमान आदि कल्पनायें करते हुये विभिन्न चिंतन करना, वाणी बंधन है।

क्योंकि मन इन दोनों जगह ही जीव को अटकाये रखता है।

मोटी माया सब तजें, झीनी तजी न जाय।
मान बड़ाई ईर्ष्या, फ़िर लख चौरासी लाये।

सन्तमत में खानी बंधन को 'मोटीमाया' और वाणी बंधन को 'झीनीमाया' कहते हैं। बिना ज्ञान के इन बंधनों से छूट पाना जीव के लिये बेहद कठिन है। खानी बंधन के अंतर्गत मोटीमाया को त्याग करते तो बहुत लोग देखे गये हैं परन्तु झीनीमाया का त्याग बिरले ही कर पाते हैं। कामना, वासनारूपी झीनीमाया का बंधन बहुत ही जटिल है इसने सभी को भ्रम में फ़ँसा रखा है। इसके जाल में फ़ँसा कभी स्थिर नहीं हो पाता अतः यह कालनिरंजन सब जीवों को अपने जाल में फ़ँसाकर बहुत सताता है।

राजा बलि, हरिश्चन्द्र, वेणु, विरोचन, कर्ण, युधिष्ठर आदि और भी प्रथ्वी के प्राणियों का हितचिंतन करने वाले कितने त्यागी और दानी राजा हुये। इनको कालनिरंजन ने किस देश में ले जाकर रखा? यानी ये सब भी काल के गाल में ही समा गये। कालनिरंजन ने इन सभी राजाओं की जो दुर्दशा की वह सारा संसार ही जानता है कि ये सब बेवश होकर काल के अधीन थे। संसार जानता है कि कालनिरंजन से अलग न हो पाने के कारण उनके ह्रदय की शुद्धि नहीं हुयी। कालनिरंजन बहुत प्रबल है, उसने सबकी बुद्धि हर ली है।

ये कालनिरंजन अभिमानी 'मन' हुआ जीवों की देह के भीतर ही रहता है। उसके प्रभाव में आकर जीव 'मन की तरंग' में विषयवासना में भूला रहता है। जिससे वह अपने कल्याण के साधन नहीं कर पाता, तब ये अज्ञानी भ्रमित जीव अपने घर अमरलोक की तरफ़ पलटकर भी नहीं देखता, और सत्य से सदा अनजान ही रहता है।

धर्मदास बोले - मैंने यम यानी कालनिरंजन का धोखा तो पहचान लिया है। अब बताओ कि गायत्री के शाप का आगे क्या हुआ।

कबीर साहब बोले - मैं तुम्हारे सामने अगम (जहाँ पहुँचना असंभव हो) ज्ञान कहता हूँ। गायत्री ने अष्टांगी द्वारा दिया शाप स्वीकार तो कर लिया पर उसने भी पलट कर अष्टांगी को शाप दिया कि माता, मनुष्य जन्म में जब मैं पाँच पुरूषों की पत्नी बनूँ तो उन पुरूषों की माता तुम बनो। उस समय तुम बिना पुरूष के ही पुत्र उत्पन्न करोगी, और इस बात को संसार जानेगा।

आगे द्वापर युग आने पर दोनों ने, गायत्री ने द्रौपदी, और अष्टांगी ने कुन्ती के रूप में देह धारण की, और एक-दूसरे के शाप का फ़ल भुगता।

जब यह शाप और उसका झगड़ा समाप्त हो गया तब फ़िर से जगत की रचना हुयी। ब्रह्मा, विष्णु, महेश और अष्टांगी इन चारो ने अण्डज, पिण्डज, ऊष्मज और स्थावर इन चार खानियों को उत्पन्न किया। फ़िर चार-खानियों के अंतर्गत भिन्न-भिन्न स्वभाव की चौरासी लाख योनियाँ उत्पन्न की।

पहले अष्टांगी ने अण्डज यानी अंडे से उत्पन्न होने वाले जीवखानि की रचना की। ब्रह्मा ने पिण्डज यानी शरीर के अन्दर गर्भ से उत्पन्न होने वाले जीवखानि की रचना की। विष्णु ने ऊष्मज यानी मैल, पसीना, पानी आदि से

उत्पन्न होने वाले जीवखानि की रचना की। शंकर ने स्थावर यानी वृक्ष, जङ, पहाङ, घास, बेल आदि जीवखानि की रचना की।

इस तरह से चारों खानियों को चारों ने रच दिया, और उसमें जीव को बँधन में डाल दिया। फ़िर प्रथ्वी पर खेती आदि होने लगी तथा समयानुसार लोग 'कारण' 'करण' और 'कर्ता' को समझने लगे। इस प्रकार चार खानों की चौरासी का विस्तार हो गया। इन चार खानियों को बोलने के लिये 'चार प्रकार की वाणी' दी गयी। ब्रह्मा, विष्णु, महेश और अष्टांगी द्वारा सृष्टिरचना होने के कारण जीव उन्हीं को सब कुछ समझने लगे और सत्यपुरूष की तरफ़ से भूले रहे।

चार खानि चौरासी लाख योनियों से आये मनुष्य के लक्षण

धर्मदास बोले - जिन चार खानों की उत्पत्ति हुयी, उनका वर्णन मुझे बतायें। चौरासीलाख योनियों की जो विकराल धारायें हैं। उनमें किस योनि का कितना विस्तार हुआ, वह भी बतायें।

कबीर साहब बोले - मैं तुम्हें योनिभाव का वर्णन सुनाता हूँ। चौरासी लाख योनियों में नौ लाख जल के जीव, और चौदह लाख पक्षी होते हैं। उङने, रेंगने वाले कृमि-कीट आदि सत्ताईस लाख होते हैं। वृक्ष, बेल, फ़ूल आदि स्थावर तीस लाख होते हैं, और चारलाख प्रकार के मनुष्य हुये।

इन सब योनियों में मनुष्यदेह सबसे श्रेष्ठ है, क्योंकि इसी से मोक्ष को जाना, समझा और प्राप्त किया जा सकता है। मनुष्ययोनि के अतिरिक्त और किसी योनि में मोक्षपद या परमात्मा का ज्ञान नहीं होता क्योंकि और योनि के जीव कर्मबँधन में भटकते रहते हैं।

धर्मदास बोले - जब सभी योनियों के जीव एक समान हैं तो फ़िर सभी जीवों को एक सा ज्ञान क्यों नहीं है?

कबीर साहिब बोले - जीवों की असमानता की वजह तुम्हें समझा कर कहता हूँ। चारखानि के जीव एक समान हैं परन्तु शरीररचना में तत्वविशेष का अन्तर है। स्थावर खानि में सिर्फ़ 'एक तत्व' होता है। ऊष्मज में 'दो तत्व' अण्डज खानि में 'तीन तत्व' और पिण्डज खानि में 'चारतत्व' होते हैं। इनसे अलग मनुष्यशरीर में पाँच-तत्व होते हैं।

अब चार खानि का तत्वनिर्णय भी जानों। अण्डज खानि में तीन तत्व - जल, अग्नि, और वायु हैं। स्थावर खानि में एक तत्व 'जल' विशेष है। ऊष्मज खानि में दो तत्व वायु तथा अग्नि बराबर समझो। पिण्डज खानि में चार तत्व अग्नि, प्रथ्वी, जल और वायु विशेष हैं। पिण्डज खानि में ही आने वाला मनुष्य - अग्नि, वायु, प्रथ्वी, जल, आकाश से बना है।

धर्मदास बोले - मनुष्ययोनि में नर-नारी तत्वों में एक समान हैं परन्तु सबको एक समान ज्ञान क्यों नहीं है। संतोष, क्षमा, दया, शील आदि सदगुणों से कोई मनुष्य तो शून्य होता है तथा कोई इन गुणों से परिपूर्ण होता है। कोई मनुष्य पापकर्म करने वाला अपराधी होता है, तो कोई विद्वान। कोई दूसरों को दुख देने वाले स्वभाव का होता है,

तो कोई अतिक्रोधी कालरूप होता है। कोई मनुष्य किसी जीव को मारकर उसका आहार करता है, तो कोई जीवों के प्रति दयाभाव रखता है। कोई आध्यात्म की बात सुनकर सुख पाता है, तो कोई कालनिरंजन के गुण गाता है। मनुष्यों में यह नानागुण किस कारण से होते हैं?

कबीर साहिब बोले - मैं तुमसे मनुष्ययोनि के नर-नारी के गुण, अवगुण को भली प्रकार से कहता हूँ। किस कारण से मनुष्य ज्ञानी और अज्ञानी भाव वाला होता है। वह पहचान सुनो।
शेर, साँप, कुत्ता, गीदड़, सियार, कौवा, गिद्ध, सुअर, बिल्ली तथा इनके अलावा और भी अनेक जीव हैं जो इनके समान हिंसक, पापयोनि, अभक्ष्य माँस आदि खाने वाले दुष्कर्मी, नीच गुणों वाले समझे जाते हैं। इन योनियों में से जो जीव आकर मनुष्ययोनि में जन्म लेता है, तो भी उसके पीछे की योनि का स्वभाव नहीं छूटता।

उसके पूर्वकर्मों का प्रभाव उसको अभी प्राप्त मानवयोनि में भी बना रहता है अतः वह मनुष्यदेह पाकर भी पूर्व के से कर्मों में प्रवृत रहता है। ऐसे पशुयोनियों से आये जीव नरदेह में होते हुये भी प्रत्यक्ष पशु ही दिखायी देते हैं। जिस योनि से जो मनुष्य आया है उसका स्वभाव भी वैसा ही होगा। जो दूसरों पर घात करने वाले, क्रूर, हिंसक, पापकर्मी तथा क्रोधी विषैले स्वभाव के जीव हैं। उनका भी वैसा ही स्वभाव बना रहता है।

धर्मदास, मनुष्ययोनि में जन्म लेकर ऐसे स्वभाव को मेटने का एक ही उपाय है कि किसी प्रकार सौभाग्य से सदगुरू मिल जायें, तो वे ज्ञान द्वारा अज्ञान से उत्पन्न इस प्रभाव को नष्ट कर देते हैं, और फ़िर मनुष्य कागदशा (विष्ठा, मल आदि के समान वासनाओं की चाहत) के प्रभाव को भूल जाता है। उसका अज्ञान पूरी तरह समाप्त हो जाता है तब पूर्व पशुयोनि और अभी की मनुष्ययोनि का यह द्वंद छूट जाता है।

सदगुरूदेव ज्ञान के आधार हैं वे अपने शरण में आये हुये जीव को ज्ञानअग्नि में तपाकर एवं उपाय से घिस पीटकर सत्यज्ञान उपदेश अनुसार उसे वैसा ही बना लेते हैं, और निरंतर साधना अभ्यास से उस पर प्रभावी पूर्वयोनियों के संस्कार समाप्त कर देते हैं।

जिस प्रकार धोबी वस्त्र धोता है, और साबुन मलने से वस्त्र साफ़ हो जाता है तब वस्त्र में यदि थोड़ा सा ही मैल हो तो वह थोड़ी ही मेहनत से साफ़ हो जाता है। परन्तु वस्त्र बहुत अधिक गन्दा हो तो उसको धोने में अधिक मेहनत की आवश्यकता होती है। वस्त्र की भांति ही जीवों के स्वभाव को जानो। कोई-कोई जीव जो अंकुरी होता है, ऐसा जीव सदगुरू के थोड़े से ज्ञान को ही विचार कर शीघ्र ग्रहण कर लेता है। उसे ज्ञान का संकेत ही बहुत होता है, अधिक ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती। ऐसा शिष्य ही सच्चेज्ञान का अधिकारी होता है।

धर्मदास बोले - यह तो थोड़ी सी योनियों की बात हुयी, अब चारखानि के जीवों की बात कहें। चारखानि के जीव जब मनुष्ययोनि में आते हैं, उनके लक्षण क्या हैं? जिसे जानकर मैं सावधान हो जाऊँ।

कबीर साहिब बोले - चारखानों की चौरासी लाख योनियों में भरमाया भटकता जीव जब बड़े भाग्य से मनुष्यदेह धारण करने का अवसर पाता है तब उसके अच्छे-बुरे लक्षणों का भेद तुमसे कहता हूँ।
जिसको बहुत ही आलस नींद आती है तथा कामी, क्रोधी और दरिद्र होता है। वह अण्डज खानि से आया है। जो बहुत चंचल है और चोरी करना जिसे अच्छा लगता है। धन-माया की बहुत इच्छा रखता है दूसरों की चुगली निंदा जिसे अच्छी लगती है। इसी स्वभाव के कारण वह दूसरों के घर, वन तथा झाड़ी में आग लगाता है तथा चंचल होने के कारण कभी बहुत रोता है।

कभी नाचता-कूदता है कभी मंगल गाता है। भूतप्रेत की सेवा उसके मन को बहुत अच्छी लगती है। किसी को कुछ देता हुआ देखकर वह मन में चिढ़ता है। किसी भी विषय पर सबसे वाद-विवाद करता है। ज्ञान, ध्यान उसके मन में कुछ नहीं आते। वह गुरू, सदगुरू को नहीं पहचानता, न मानता। वेदशास्त्र को भी नहीं मानता। वह अपने मन से ही छोटा, बङा बनता रहता है, और समझता है कि मेरे समान दूसरा कोई नहीं है। उसके वस्त्र मैले तथा आँखे कीचङयुक्त और मुँह से लार बहती है। वह अक्सर नहाता भी नहीं है। जुआ चौपङ के खेल में मन लगाता है। उसका पांव लम्बा, और कभी-कभी वह कुबङा भी होता है। ये सब अण्डज खानि से आये मनुष्य के लक्षण हैं।

अब ऊष्मज के बारे में कहता हूँ। यह जंगल में जाकर शिकार करते हुये बहुत जीवों को मारकर खुश होता है। इन जीवों को मारकर अनेक तरह से पकाकर वह खाता है। वह सदगुरू के नाम-ज्ञान की निंदा करता है। गुरू की बुराई और निंदा करके वह गुरू के महत्व को मिटाने का प्रयास करता है। वह शब्दउपदेश और गुरू की निंदा करता है। वह बहुत बात करता है तथा बहुत अकङता है, और अहंकार के कारण बहुत ज्ञान बनाकर समझाता है। वह सभा में झूठे वचन कहता है। टेङी पगङी बाँधता है जिसका किनारा छाती तक लटकता है। दया, धर्म उसके मन में नहीं होता।

कोई पुण्य-धर्म करता है वह उसकी हंसी उङाता है। माला पहनता है और चंदन का तिलक लगाता है तथा शुद्ध सफ़ेद वस्त्र पहनकर बाजार आदि में घूमता है। वह अन्दर से पापी और बाहर से दयावान दिखता है, ऐसा अधम-नीच जीव यम के हाथ बिक जाता है। उसके दाँत लम्बे तथा बदन भयानक होता है। उसके पीले नेत्र होते हैं।

कबीर साहिब बोले - अब स्थावर खानि से आये जीव (मनुष्य) के लक्षण सुनो। इससे आया जीव भैंसे के समान शरीर धारण करता है। ऐसे जीवों की बुद्धि क्षणिक होती है अतः उनको पलटने में देर नहीं लगती।
वह कमर में फ़ेंटा सिर पर पगङी बाँधता है तथा राजदरबार की सेवा करता है, कमर में तलवार, कटार बाँधता है। इधर-उधर देखता हुआ मन से सैन (आँख मारकर इशारा करना) मारता है। परायी स्त्री को सैन से बुलाता है। मुँह से रसभरी मीठी बातें कहता है, जिनमें कामवासना का प्रभाव होता है। वह दूसरे के घर को कुदृष्टि से ताकता है तथा जाकर चोरी करता है। पकङे जाने पर राजा के पास लाया जाता है। सारा संसार भी उसकी हंसी उङाता है फ़िर भी उसको लाज नहीं आती।

एक क्षण में ही देवी-देवता की पूजा करने की सोचता है, दूसरे ही क्षण विचार बदल देता है। कभी उसका मन किसी की सेवा में लग जाता है फ़िर जल्दी ही वह उसको भूल भी जाता है। एक क्षण में ही वह (कोई) किताब पढ़कर ज्ञानी बन जाता है। एक क्षण में ही वह सबके घर आना, जाना, घूमना करता है। एक क्षण में बहादुर एक क्षण में ही कायर भी हो जाता है। एक क्षण में ही मन में साहू (धनी) हो जाता है, और दूसरे क्षण में ही चोरी करने की सोचता है। एक क्षण में धर्म और दूसरे क्षण में अधर्म भी करता है। इस प्रकार क्षण, प्रतिक्षण मन के बदलते भावों के साथ वह सुखी, दुखी होता है। भोजन करते समय माथा खुजाता है तथा फ़िर बाँह जाँघ पर रगङता है। भोजन करता है फ़िर सो जाता है। जो जगाता है उसे मारने दौङता है, और गुस्से से जिसकी आँखें लाल हो जाती हैं, और उसका भेद कहाँ तक कहूँ।

धर्मदास, अब पिण्डज खानि से आये जीव का लक्षण सुनो। पिण्डज खानि से आया जीव वैरागी होता है तथा योगसाधना की मुद्राओं में उनमनी-समाधि का मत आदि धारण करने वाला होता है। और वह जीव वेद आदि का विचार कर धर्म-कर्म करता है। तीर्थ, व्रत, ध्यान, योग, समाधि में लगन वाला होता है। उसका मन गुरूचरणों में

भली प्रकार लगता है। वह वेद, पुराण का ज्ञानी होकर बहुत ज्ञान करता है, और सभा में बैठकर मधुर वार्तालाप करता है। राज मिलने का तथा राज के कार्य करने का और स्त्रीसुख को बहुत मानता है। कभी भी अपने मन में शंका नहीं लाता, और धन-संपत्ति के सुख को मानता है। बिस्तर पर सुन्दर शैया बिछाता है।

उसे उत्तम शुद्ध, सात्विक, पौष्टिक भोजन बहुत अच्छा लगता है, और लौंग, सुपारी, पान, बीड़ा आदि खाता है। पुण्यकर्म में धन खर्च करता है। उसकी आँखों में तेज और शरीर में पुरूषार्थ होता है। स्वर्ग सदा उसके वश में है। वह कहीं भी देवी-देवता को देखता है तो माथा झुकाता है। उसका ध्यान सुमरन में बहुत मन लगता है तथा वह सदा गुरू के अधीन रहता है।

चौरासी क्यों बनी?

कबीर साहब बोले - मैंने चारो खानि के लक्षण तुमसे कहे। अब सुनो, मनुष्ययोनि की अवधि समाप्त होने से पहले किसी कारण से देह छूट जाय, वह फ़िर से संसार में मनुष्य जन्म लेता है। अब उसके बारे में सुनो।

धर्मदास बोले - मेरे मन में एक संशय है जब चौरासी लाख योनियों में भरमने, भटकने के बाद ये जीव मनुष्यदेह पाता है, और मनुष्यदेह पाया हुआ ये जीव फ़िर देह (असमय) छूटने पर पुनः मनुष्यदेह पाता है, तो मृत्यु होने और पुनः मनुष्यदेह पाने की यह संधि कैसे हुयी? और उस पुनः मनुष्य जन्म लेने वाले के गुण लक्षण भी कहो।

कबीर साहब बोले - आयु शेष रहते जो मनुष्य मर जाता है फ़िर वह शेष बची आयु को पूरा करने हेतु मनुष्यशरीर धारण करके आता है। जो अज्ञानी मूर्ख फ़िर भी इस पर विश्वास न करे, वह दीपक बत्ती जलाकर देखे, और बहुत प्रकार से उस दीपक में तेल भरे परन्तु वायु का झोंका (मृत्यु आघात) लगते ही वह दीपक बुझ जाता है, (भले ही उसमें खूब तेल भरा हो) उसे बुझे दीपक को आग से फ़िर जलाये तो वह दीपक फ़िर से जल जाता है। इसी प्रकार जीव मनुष्य फ़िर से देह धारण करता है।

अब उस मनुष्य के लक्षण भी सुनो, उसका भेद तुमसे नही छुपाऊँगा। मनुष्य से फ़िर मनुष्य का शरीर पाने वाला वह मनुष्य शूरवीर होता है। भय और डर उसके पास भी नहीं फ़टकता, मोहमाया ममता उसे नहीं व्यापते। उसे देखकर दुश्मन डर से कांपते हैं। वह सतगुरू के सत्यशब्द को विश्वासपूर्वक मानता है। निंदा को वह जानता तक नहीं। वह सदा सदगुरू के श्रीचरणों में अपना मन लगाता है, और सबसे प्रेममयी वाणी बोलता है। अज्ञानी होकर ज्ञान को पूछता, समझता है। उसे सत्यनाम का ज्ञान और परिचय करना बेहद अच्छा लगता है।

धर्मदास, ऐसे लक्षणों से युक्त मनुष्य से ज्ञानवार्ता करने का अवसर कभी खोना नहीं चाहिये, और अवसर मिलते ही उससे ज्ञानचर्चा करनी चाहिये। जो जीव सदगुरू के शब्दरूपी उपदेश को पाता है, और भली प्रकार ग्रहण करता है। उसके जन्म-जन्म का पाप और अज्ञानरूपी मैल छूट जाता है। सत्यनाम का प्रेमभाव से सुमरन करने वाला जीव, भयानक काल-माया के फ़ंदे से छूटकर सत्यलोक जाता है। सदगुरू के शब्दउपदेश को ह्रदय में धारण करने वाला जीव अमृतमय अनमोल होता है। वह सत्यनाम साधना के बल पर अपने असलीघर अमरलोक चला जाता है जहाँ सदगुरू के हंसजीव सदा आनन्द करते हैं, और अमृत आहार करते हैं।

जबकि कालनिरंजन के जीव कागदशा (विष्ठा, मल के समान घृणित वासनाओं के लालची) में भटकते हुये जन्म-मरण के कालझूले में झूलते रहते हैं। सत्यनाम के प्रताप से कालनिरंजन जीव को सत्यलोक जाने से नहीं रोकता क्योंकि महाबली कालनिरंजन केवल इसी से भयभीत रहता है। उस जीव पर सदगुरू के वंश की छाप देखकर काल बेवशी से सिर झुकाकर रह जाता है।

धर्मदास बोले - आपने चारखानि के जो विचार कहे वो मैंने सुने। अब मैं जानना चाहता हूँ कि चौरासी लाख योनियों की धारा का विस्तार किस कारण से किया गया, और इस अविनाशी जीव को अनगिनत कष्टों में डाल दिया गया। मनुष्य के कारण ही यह सृष्टि बनायी गयी है, या कि कोई और जीव को भी भोग भुगतने के लिये बनायी गयी है?

कबीर साहब बोले - सभी योनियों में श्रेष्ठ मनुष्यदेह सुख देने वाली है। इस मनुष्यदेह में ही गुरूज्ञान समाता है, जिसको प्राप्त कर मनुष्य अपना कल्याण कर सकता है। ऐसा मनुष्यशरीर पाकर जीव जहाँ भी जाता है, सदगुरू की भक्ति के बिना दुख ही पाता है। मनुष्यदेह को पाने के लिये जीव को चौरासी के भयानक महाजाल से गुजरना ही होता है फ़िर भी यह देह पाकर मनुष्य अज्ञान और पाप में ही लगा रहता है, तो उसका घोरपतन निश्चित है। उसे फ़िर से भयंकर कष्टदायक (साढ़े बारह लाख साल आयु की) चौरासी धारा से गुजरना होगा। दर-ब-दर भटकना होगा।

सत्यज्ञान के बिना मनुष्य तुच्छ विषयभोगों के पीछे भागता हुआ अपना जीवन बिना परमार्थ के ही नष्ट कर लेता है ऐसे जीव का कल्याण किस तरह हो सकता है, उसे मोक्ष भला कैसे मिलेगा? अतः इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये सतगुरू की तलाश और उनकी सेवा भक्ति अतिआवश्यक है।

धर्मदास, मनुष्य के भोगउद्देश्य से चौरासी धारा या चौरासी लाख योनियाँ रची गयीं हैं। सांसारिक-माया और मन-इन्द्रियों के विषयों के मोह में पङकर मनुष्य की बुद्धि का नाश हो जाता है। वह मूढ़, अज्ञानी ही हो जाता है, और वह सदगुरू के शब्दउपदेश को नहीं सुनता तो वह मनुष्य चौरासी को नहीं छोङ पाता। उस अज्ञानी जीव को भयंकर कालनिरंजन चौरासी में लाकर डालता है। जहाँ भोजन, नींद, डर और मैथुन के अतिरिक्त किसी पदार्थ का ज्ञान या अन्य ज्ञान बिलकुल नहीं है। चौरासी लाख योनियों के विषयवासना के प्रबलसंस्कार के वशीभूत हुआ ये जीव बारबार क्रूरकाल के मुँह में जाता है, और अत्यन्त दुखदायी जन्म-मरण को भोगता हुआ भी, ये अपने कल्याण का साधन नहीं करता।

धर्मदास, अज्ञानी जीवों की इस घोर विपत्ति संकट को जानकर उन्हें सावधान करने के लिये (सन्तों ने) पुकारा, और बहुत प्रकार से समझाया कि मनुष्यशरीर पाकर सत्यनाम ग्रहण करो, और इस सत्यनाम के प्रताप से अपने निजधाम सत्यलोक को प्राप्त करो। आदिपुरूष के विदेह (बिना वाणी से जपा जाने वाला) और स्थिर आदिनाम (जो शुरूआत से एक ही है) को जो जाँच-समझ कर (सच्चेगुरू से, मतलब ये नाम मुँह से जपने के बजाय धुनिरूप होकर प्रकट हो जाय यही सच्चेगुरू और सच्चीदीक्षा की पहचान है) जो जीव ग्रहण करता है, उसका निश्चित ही कल्याण होता है।

गुरू से प्राप्त ज्ञान से आचरण करता हुआ वह जीव सार को ग्रहण करने वाला नीर-क्षीर विवेकी (हंस की तरह दूध और पानी के अन्तर को जानने वाला) हो जाता है, और कौवे की गति (साधारण और दीक्षारहित मनुष्य) त्याग कर हंसगति वाला हो जाता है। इस प्रकार की ज्ञानदृष्टि के प्राप्त होने से वह विनाशी तथा अविनाशी का विचार करके

इस नश्वर, नाशवान जड़ देह के भीतर ही अगोचर और अविनाशी परमात्मा को देखता है।

धर्मदास, विचार करो वह निःअक्षर (शाश्वत नाम) ही सार है। जो अक्षर (ज्योति जिस पर सभी योनियों के शरीर बनते हैं, ध्यान की एक ऊँची स्थिति) से प्राप्त होता है। सब जड़तत्वों से परे, वही असली सारतत्व है।

कालनिरंजन की चालबाजी

धर्मदास बोले - साहिब, चार खानियों की रचना कर फ़िर क्या किया? यह मुझे स्पष्ट कहो।

कबीर साहब बोले - धर्मदास, यह कालनिरंजन की चालबाजी है जिसे पंडित, काजी नहीं समझते, और वे इस 'भक्षक कालनिरंजन' को भ्रमवश स्वामी (भगवान आदि) कहते हैं, और सत्यपुरूष के नाम, ज्ञानरूपी अमृत को त्याग कर माया का विषयरूपी विष खाते हैं। इन चारो अष्टांगी (आदिशक्ति) ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने मिलकर यह सृष्टिरचना की, और उन्होंने जीव की देह को कच्चा रंग दिया। इसीलिये मनुष्यदेह में आयु समय आदि के अनुसार बदलाव होता रहता है।

पाँच-तत्व प्रथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश और तीन गुण सत, रज, तम से देह की रचना हुयी है। उसके साथ चौदह-चौदह यम लगाये गये हैं। इस प्रकार मनुष्यदेह की रचना कर काल ने उसे मार खाया तथा फ़िर फ़िर उत्पन्न किया। इस तरह मनुष्य सदा जन्म-मरण के चक्कर में पड़ा ही रहता है।

ओंकार वेद का मूल अर्थात आधार है, और इस ओंकार में ही संसार भूला-भूला फ़िर रहा है। संसार के लोगों ने ओंकार को ही ईश्वर परमात्मा सब कुछ मान लिया। वे इसमें उलझ कर सब ज्ञान भूल गये, और तरह-तरह से इसी की व्याख्या करने लगे। यह ओंकार ही निरंजन है परन्तु आदिपुरूष का सत्यनाम जो विदेह है, उसे गुप्त समझो। कालमाया से परे, वह 'आदिनाम' गुप्त ही है।

धर्मदास, फ़िर ब्रह्मा ने अठासी हजार ऋषियों को उत्पन्न किया, जिससे कालनिरंजन का प्रभाव बहुत बढ़ गया (क्योंकि वे उसी का गुण तो गाते हैं) ब्रह्मा से जो जीव उत्पन्न हुये, वो ब्राह्मण कहलाये। ब्राह्मणों ने आगे इसी शिक्षा के लिये शास्त्रों का विस्तार कर दिया (इससे कालनिरंजन का प्रभाव और भी बढ़ा, क्योंकि उनमें उसी की बनावटी महिमा गायी गयी है)

ब्रह्मा ने स्मृति, शास्त्र, पुराण आदि धर्मग्रन्थों का विस्त्रत वर्णन किया, और उसमें समस्त जीवों को बुरी तरह उलझा दिया (जबकि परमात्मा को जानने का सीधा सरल आसान रास्ता 'सहजयोग' है) जीवों को ब्रह्मा ने भटका दिया, और शास्त्र में तरह-तरह के कर्मकांड, पूजा, उपासना की नियम विधि बताकर जीवों को सत्य से विमुख कर भयानक कालनिरंजन के मुँह में डालकर उसी (अलखनिरंजन) की महिमा को बताकर झूठा ध्यान (और ज्ञान) कराया। इस तरह 'वेदमत' से सब भ्रमित हो गये, और सत्यपुरूष के रहस्य को न जान सके।

धर्मदास, निरंकार (निरंकारी) निरंजन ने यह कैसा झूठा तमाशा किया, उस चरित्र को भी समझो। कालनिरंजन (मन

द्वारा) आसुरीभाव उत्पन्न कर प्रताड़ित जीवों को सताता है। देवता, ऋषि, मुनि सभी को प्रताड़ित करता है फ़िर अवतार (दिखावे के लिये निजमहिमा के लिये) धारण कर रक्षक बनता है, (जबकि सबसे बड़ा भक्षक स्वयं हैं) और फ़िर असुरों का संहार (के नाटक) करता है, और इस तरह सबसे अपनी महिमा का विशेष गुणगान करवाता है।

जिसके कारण जीव उसे शक्तिसंपन्न और सब कुछ जानकर उसी से आशा बाँधते हैं कि यही हमारा महान रक्षक है। वह (विभिन्न अवतार द्वारा) अपनी रक्षककला दिखाकर अन्त में सब जीवों का भक्षण कर लेता है (यहाँ तक कि अपने पुत्र ब्रहमा, विष्णु, महेश को भी नहीं छोड़ता) जीवन भर उसके नाम, ज्ञान, जप, पूजा आदि के चक्कर में पड़ा जीव अन्त समय पछताता है। जब काल उसे बेरहमी से खाता है (मृत्यु से कुछ पहले अपनी आगामी गति पता लग जाती है)

तप्तशिला पर काल पीड़ित जीवों की पुकार

धर्मदास, अब आगे सुनो, ब्रहमा ने अड़सठ तीर्थ स्थापित कर पाप, पुण्य और कर्म, अकर्म का वर्णन किया। फ़िर ब्रहमा ने बारह राशि, सत्ताईस नक्षत्र, सात वार और पंद्रह तिथि का विधान रचा इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र की रचना हुयी। अब आगे की बात सुनो।

कबीर साहब बोले - धर्मदास, कालनिरंजन का जाल फ़ैलाने के लिये बनाये गये अड़सठ तीर्थ ये हैं।
1 काशी 2 प्रयाग 3 नैमिषारण्य 4 गया 5 कुरुक्षेत्र 6 प्रभास 7 पुष्कर 8 विश्वेश्वर 9 अट्टहास 10 महेंद्र 11 उज्जैन 12 मरुकोट 13 शंकुकर्ण 14 गोकर्ण 15 रुद्रकोट 16 स्थलेश्वर 17 हर्षित 18 वृषभध्वज 19 केदार 20 मध्यमेश्वर 21 सुपर्ण 22 कार्तिकेश्वर 23 रामेश्वर 24 कनखल 25 भद्रकर्ण 26 दंडक 27 चिदण्डा 28 कृमिजांगल 29 एकाग्र 30 छागलेय 31 कालिंजर 32 मंडकेश्वर 33 मथुरा 34 मरुकेश्वर 35 हरिश्चंद्र 36 सिद्धार्थ क्षेत्र 37 वामेश्वर 38 कुक्कुटेश्वर 39 भस्मगात्र 40 अमरकंटक 41 त्रिसंध्या 42 विरजा 43 अर्केश्वर 44 द्वारिका 45 दुष्कर्ण 46 करबीर 47 जलेश्वर 48 श्रीशैल 49 अयोध्या 50 जगन्नाथपुरी 51 कारोहण 52 देविका 53 भैरव 54 पूर्वसागर 55 सप्तगोदावरी 56 निमलेश्वर 57 कर्णिकार 58 कैलाश 59 गंगाद्वार 60 जललिंग 61 बड़वाग्नि 62 बद्रिकाश्रम 63 श्रेष्ठ स्थान 64 विंध्याचल 65 हेमकूट 66 गंधमादन 67 लिंगेश्वर 68 हरिद्वार

और बारह राशियाँ - मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ, मीन..ये हैं।

तथा सत्ताईस नक्षत्र - अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफ़ाल्गुनी, उत्तराफ़ाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, धर्निष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रप्रद, उत्तराभादप्रद, रेवती..ये हैं।

सात दिन - रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार, शुक्रवार, शनिवार।

पंद्रह तिथियाँ - प्रथम या पड़वा, दूज, तीज, चौथ, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चौदस, पूर्णिमा।

(शुक्लपक्ष) दूसरा एक कृष्णपक्ष भी होता है जिसकी सभी तिथियाँ ऐसी ही होती हैं। केवल उसकी पंद्रहवी तिथि को पूर्णिमा के स्थान पर अमावस्या कहते हैं।

धर्मदास, फ़िर ब्रहमा ने चारो युगों के समय को एक नियम से विस्तार करते हुये बाँध दिया। एक पलक झपकने में जितना समय लगता है, उसे पल कहते हैं। साठपलक को एकघडी कहते हैं। एकघडी चौबीस मिनट की होती है। साढ़ेसात घडी का एकपहर होता है। आठपहर का दिन-रात चौबीस घंटे होते हैं।
सात दिनों का एक सप्ताह, और पंद्रह दिनों का एकपक्ष होता है। दो-पक्ष का एक महीना, और बारह महीने का एक वर्ष होता है। सत्रह लाख अट्ठाईस हजार वर्ष का सतयुग, बारह लाख छियानबे हजार का त्रेता, और आठ लाख चौसठ हजार का द्वापर, तथा चार लाख बत्तीस हजार का कलियुग होता है। चार युगों को मिलाकर एक महायुग होता है।

(युगों का समय गलत..बल्कि बहुत ज्यादा गलत है। ये विवरण कबीर साहब द्वारा बताया नहीं है बल्कि अन्य आधार पर है। कलियुग सिर्फ़ बाईस हजार वर्ष का होता है, और त्रेता लगभग अड़तीस हजार वर्ष का होता है)

धर्मदास, बारह महीने में कार्तिक और माघ इन दो महीनों को पुण्य वाला कह दिया। जिससे जीव विभिन्न धर्म-कर्म करे, और उलझा रहे। जीवों को इस प्रकार भ्रम में डालने वाले कालनिरंजन (और उसके परिवार) की चालाकी कोई बिरला ही समझ पाता है। प्रत्येक तीर्थ-धाम का बहुत महात्मय (महिमा) बताया जिससे कि मोहवश जीव लालच में तीर्थों की ओर भागने लगे। बहुत सी कामनाओं की पूर्ति के लिये लोग तीर्थों में नहाकर पानी और पत्थर से बनी देवी-देवता की मूर्तियों को पूजने लगे। लोग आत्मा, परमात्मा (के ज्ञान) को भूलकर इस झूठपूजा के भ्रम में पङ गये। इस तरह काल ने सब जीवों को बुरी तरह उलझा दिया।

सदगुरू के सत्यशब्द उपदेश बिना जीव सांसारिक कलेश, काम, क्रोध, शोक, मोह, चिंता आदि से नहीं बच सकता। सदगुरू के नाम बिना वह यमरूपी काल के मुँह में ही जायेगा, और बहुत से दुखों को भोगेगा। वास्तव में जीव कालनिरंजन का भय मानकर ही पुण्य कमाता है। थोङे फ़ल से धन-संपत्ति आदि से उसकी भूख शान्त नहीं होती।

जबतक जीव सत्यपुरूष से डोर नहीं जोङता। सदगुरू से दीक्षा लेकर भक्ति नहीं करता तबतक चौरासी लाख योनियों में बारबार आता-जाता रहेगा। यह कालनिरंजन अपनी असीमकला जीव पर लगाता है, और उसे भरमाता है। जिससे जीव सत्यपुरूष का भेद नहीं जान पाता।

लाभ के लिये जीव लोभवश शास्त्र में बताये कर्मों की और दौङता फ़िरता है, और उससे फ़ल पाने की आशा करता है। इस प्रकार जीव को झूठी आशा बँधाकर काल धरकर खा जाता है। कालनिरंजन की चालाकी कोई पहचान नहीं पाता, और कालनिरंजन शास्त्रों द्वारा पाप-पुण्य के कर्मों से स्वर्ग-नर्क की प्राप्ति और विषयभोगों की आशा बँधाकर जीव को चौरासी लाख योनियों में नचाता है।

पहले सतयुग में इस कालनिरंजन का यह व्यवहार था कि वह जीवों को लेकर आहार करता था। वह एक लाख जीव नित्य खाता था, ऐसा महान और अपार बलशाली कालनिरंजन कसाई है। वहाँ रात-दिन तप्तशिला जलती थी, कालनिरंजन जीवों को पकङ कर उस पर धरता था। उस तप्तशिला पर उन जीवों को जलाता था, और बहुत दुख देता था फ़िर वह उन्हें चौरासी में डाल देता था। उसके बाद जीवों को तमाम योनियों में भरमाता था। इस प्रकार कालनिरंजन जीवों को अनेक प्रकार के बहुत से कष्ट देता था।

तब अनेकानेक जीवों ने अनेक प्रकार से दुखी होकर पुकारा कि कालनिरंजन हम जीवों को अपार कष्ट दे रहा है, इस यमकाल का दिया हुआ कष्ट हमसे सहा नहीं जाता। सदगुरू, हमारी सहायता करो, आप हमारी रक्षा करो।

सत्यपुरूष ने जीवों को इस प्रकार पीङित होते देखा तब उन्हें दया आयी, उन दया के भंडार स्वामी ने मुझे (ज्ञानी) नाम से बुलाया, और बहुत प्रकार समझा कर कहा - ज्ञानी, तुम जाकर जीवों को चेताओ। तुम्हारे दर्शन से जीव शीतल हो जायेंगे, जाकर उनकी तपन दूर करो।

सत्यपुरूष की आज्ञा से में वहाँ आया, कालनिरंजन जीवों को सता रहा था, और दुखी जीव उसके संकेत पर नाच रहे थे। जीव दुख से छटपटा रहे थे, मैं वहाँ जाकर खङा हो गया।

जीवों ने मुझे देखकर पुकारा - हे साहिब, हमें इस दुख से उबार लो।

तब मैंने 'सत्यशब्द' पुकारा, और उपदेश किया फ़िर सत्यपुरूष के 'सारशब्द' से जीवों को जोङ दिया। दुख से जलते जीव शान्ति महसूस करने लगे।

तब सब जीवों ने स्तुति की - हे पुरूष, आप धन्य हो, आपने हम दुखों से जलते हुओं की तपन बुझायी। हमें इस कालनिरंजन के जाल से छुङा लो। प्रभु, दया करो।

मैंने जीवों को समझाया - यदि मैं अपनी शक्ति से तुम्हारा उद्धार करता हूँ तो सत्यपुरूष का वचन भंग होता है, क्योंकि सत्यपुरूष के वचन अनुसार सदउपदेश द्वारा ही आत्मज्ञान से जीवों का उद्धार करना है अतः जब तुम यहाँ से जाकर मनुष्यदेह धारण करोगे, तब तुम मेरे शब्दउपदेश को विश्वास से ग्रहण करना, जिससे तुम्हारा उद्धार होगा। उस समय मैं सत्यपुरूष के नाम सुमरन की सही विधि और सारशब्द का उपदेश करूँगा तब तुम विवेकी होकर सत्यलोक जाओगे, और सदा के लिये कालनिरंजन के बँधन से मुक्त हो जाओगे। जो कोई भी मन, वचन, कर्म से सुमरन करता है, और जहाँ अपनी आशा रखता है, वहाँ उसका वास होता है अतः संसार में जाकर देह धारण कर जिसकी आशा करोगे, और उस समय यदि तुम सत्यपुरूष को भूल गये, तो कालनिरंजन तुमको धर कर खा जायेगा।

जीव बोले - हे पुरातन पुरूष सुनो, मनुष्यदेह धारण करके (मायारचित वासनाओं में फ़ँसकर) यह ज्ञान भूल ही जाता है अतः याद नहीं रहता। पहले हमने सत्यपुरूष जानकर कालनिरंजन का सुमरन किया कि वही सब कुछ है, क्योंकि वेद, पुराण सभी यही बताते हैं। वेद-पुराण सभी एकमत होकर यही कहते हैं कि निराकार निरंजन से प्रेम करो। तैतीस करोङ देवता, मनुष्य और मुनि सबको निरंजन ने अपने विभिन्न झूठे मतों की डोरी में बाँध रखा है। उसी के झूठेमत से हमने मुक्त होने की आशा की परन्तु वह हमारी भूल थी। अब हमें सब सही-सही रूप से दिखायी दे रहा है, और समझ में आ गया है कि वह सब दुखदायी यम की कालफ़ाँस ही है।

कबीर साहब बोले - जीवों, यह सब काल का धोखा है, काल ने विभिन्न मत-मतांतरों का फ़ंदा बहुत अधिक फ़ैलाया है। कालनिरंजन ने अनेक कला, मतों का प्रदर्शन किया, और जीव को उसमें फ़ँसाने के लिये बहुत ठाठ फ़ैलाया (तरह-तरह की भोगवासना बनायी) और सबको तीर्थ, व्रत, यज्ञ एवं यज्ञादि कर्म कांडों के फ़ंदे में फ़ाँसा, जिससे कोई मुक्त नहीं हो पाता।

फ़िर आप शरीर धारण करके प्रकट होता है, और (अवतार द्वारा) अपनी विशेषमहिमा करवाता है, और नाना प्रकार के गुण कर्म आदि करके सब जीवों को बँधन में बाँध देता है। कालनिरंजन और अष्टांगी ने जीव को फ़ँसाने के लिये अनेक मायाजाल रचे। वेद, शास्त्र, पुराण, स्मृति आदि के भ्रामकजाल से भयंकरकाल ने मुक्ति का रास्ता ही बन्द कर दिया। जीव मनुष्यदेह धारण करके भी अपने कल्याण के लिये उसी से आशा करता है। कालनिरंजन की शास्त्र आदि मतरूपी कलाएं बहुत भयंकर हैं, और जीव उसके वश में पडे हैं। सत्यनाम के बिना जीव काल का दंड भोगते हैं।

इस तरह जीवों को बारबार समझा कर मैं सत्यपुरूष के पास गया, और उनको काल द्वारा दिये जा रहे विभिन्न दुखों का वर्णन किया। दयालु सत्यपुरूष तो दया के भंडार और सबके स्वामी हैं। वे जीव के मूल, अभिमानरहित और निष्कामी हैं।

तब सत्यपुरूष ने बहुत प्रकार से समझा कर कहा - काल के भ्रम से छुडाने के लिये जीवों को नाम उपदेश से सावधान करो।

कालनिरंजन और कबीर का समझौता

धर्मदास ने कबीर साहब से कहा - प्रभो, अब मुझे वह वृतांत कहो, जब आप पहली बार इस संसार में आये।

कबीर बोले - धर्मदास, जो तुमने पूछा, वह युग-युग की कथा है, जो मैं तुमसे कहता हूँ। जब सत्यपुरूष ने मुझे आज्ञा की, तब मैंने जीवों की भलाई के लिये प्रथ्वी की ओर पाँव बढ़ाया, और विकराल कालनिरंजन के क्षेत्र में आ गया। उस युग में मेरा नाम अंचित था।

जाते हुये मुझे अन्यायी कालनिरंजन मिला। वह मेरे पास आया, और झगडते हुये महाक्रोध से बोला - योगजीत, यहाँ कैसे आये? क्या मुझे मारने आये हो। हे पुरूष, अपने आने का कारण मुझे बताओ?

मैंने कहा - निरंजन, मैं जीवों का उद्धार करने सतपुरूष द्वारा भेजा गया हूँ। अन्यायी सुन, तुमने बहुत कपट चतुराई की। भोलेभाले जीवों को तुमने बहुत भ्रम में डाला है, और बारबार सताया।

सतपुरूष की महिमा को तुमने गुप्त रखा, और अपनी महिमा का बढ़ाचढ़ा कर बखान किया। तुम तप्तशिला पर जीव को जलाते हो, और उसे जला-पका कर खाते हुये अपना स्वाद पूरा करते हो तुमने ऐसा कष्ट जीवों को दिया।

तब सतपुरूष ने मुझे आज्ञा दी कि मैं तेरे जाल में फ़ँसे जीव को सावधान करके सतलोक ले जाऊँ, और कष्ट से जीव को मुक्ति दिलाऊं, इसलिये मैं संसार में जा रहा हूँ जिससे जीव को सत्यज्ञान देकर सतलोक भेजूं।

यह बात सुनते ही कालनिरंजन भयंकर रूप हो गया, और मुझे भय दिखाने लगा। फ़िर वह क्रोध से बोला - मैंने सत्तर युगों तक सतपुरूष की सेवा तपस्या की तब सतपुरूष ने मुझे तीनलोक का राज्य और उसकी मान बडाई दी

फ़िर दोबारा मैंने चौसठ युग तक सेवा तपस्या की तब सतपुरूष ने सृष्टि रचने हेतु मुझे अष्टांगी कन्या (आद्याशक्ति) को दिया, और उस समय तुमने मुझे मारकर मानसरोवर दीप से निकाल दिया था। योगजीत, अब मैं तुम्हें नहीं छोङूँगा, और तुम्हें मारकर अपना बदला लूँगा। मैं तुम्हें अच्छी तरह समझ गया।

मैंने कहा - धर्मराय निरंजन, मैं तुमसे नहीं डरता, मुझे सतपुरूष का बल और तेज प्राप्त है। अरे काल तेरा मुझे कोई डर नहीं, तुम मेरा कुछ नहीं बिगाङ सकते।

कहकर मैंने उसी समय सत्यपुरूष के प्रताप का सुमरन करके 'दिव्यशब्द अंग' से काल को मारा। मैंने उस पर दृष्टि डाली, तो उसी समय उसका माथा काला पङ गया। जैसे किसी पक्षी के पंख चोटिल होने पर वह जमीन पर पङा बेबस होकर देखता है, पर उङ नहीं पाता। ठीक यही हाल कालनिरंजन का था वह क्रोध कर रहा था, पर कुछ नहीं कर पा रहा था।

तब वह मेरे चरणों में गिर पङा, और बोला - ज्ञानीजी, मैं विनती करता हूँ कि मैंने आपको भाई समझ कर विरोध किया यह मुझसे बङी गलती हुयी। मैं आपको सत्यपुरूष के समान समझता हूँ आप बङे हो, शक्तिसम्पन्न हो, गलती करने वाले अपराधी को भी क्षमा देते हो। जैसे सत्यपुरूष ने मुझे तीनलोक का राज्य दिया वैसे ही आप भी मुझे कुछ पुरस्कार दो। सोलह सुतों में आप ईश्वर हो, ज्ञानीजी, आप और सत्यपुरूष दोनों एक समान हो।

मैंने कहा - निरंजनराव, तुम तो सत्यपुरूष के वंश (सोलह सुतों) में कालिख के समान कलंकित हुये हो। मैं जीवों को 'सत्यशब्द' का उपदेश करके सत्यनाम मजबूत करा के बचाने आया हूँ, भवसागर से जीवों को मुक्त कराने को आया हूँ। यदि तुम इसमें विघ्न डालते हो, तो मैं इसी समय तुमको यहाँ से निकाल दूँगा।

निरंजन विनती करते हुये बोला - मैं आपका एवं सत्यपुरूष दोनों का सेवक हूँ इसके अतिरिक्त मैं कुछ नहीं जानता। ज्ञानीजी, आपसे विनती है कि ऐसा कुछ मत करो जिससे मेरा बिगाङ हो, और जैसे सत्यपुरूष ने मुझे राज्य दिया, वैसे आप भी दो, तो मैं आपका वचन मानूँगा। फ़िर आप मुक्ति के लिये हंसजीव मुझसे ले लीजिये। तात, मैं विनती करता हूँ कि मेरी बात मानो। आपका कहना ये भ्रमित जीव नहीं मानेंगे, और उल्टे मेरा पक्ष लेकर आपसे वादविवाद करेंगे क्योंकि मैंने मोहरूपी फ़ंदा इतना मजबूत बनाया है कि समस्त जीव उसमें उलझ कर रह गये हैं।

वेद, शास्त्र, पुराण, स्मृति में विभिन्न प्रकार के गुणधर्म का वर्णन है, और उसमें मेरे तीन पुत्र ब्रह्मा, विष्णु, महेश देवताओं में मुख्य हैं। उनमें भी मैंने बहुत चतुराई का खेल रचा है कि मेरे मतपंथ का ज्ञान प्रमुखरूप से वर्णन किया गया है जिससे सब मेरी बात ही मानते हैं। मैं जीवों से मन्दिर, देव और पत्थर पुजवाता हूँ, और तीर्थ, व्रत, जप और तप में सबका मन फ़ँसा रहता है।

संसार में लोग देवी, देवों और भूत, भैरव आदि की पूजा आराधना करेंगे, और जीवों को मार-काट कर बलि देंगे। ऐसे अनेक मत-सिद्धांतों से मैंने जीवों को बाँध रखा है। धर्म के नाम पर यज्ञ, होम, नेम और इसके अलावा भी अनेक जाल मैंने डाल रखे हैं। अतः ज्ञानीजी, आप संसार में जायेंगे, तो जीव आपका कहा नहीं मानेंगे, और वे मेरे मतफ़ंदे में फ़ँसे रहेंगे।

मैंने कहा - अन्याय करने वाले निरंजन, मैं तुम्हारे जालफ़ंदे को काट कर जीव को सत्यलोक ले जाऊँगा। जितने भी

मायाजाल जीव को फ़ँसाने के लिये तुमने रच रखे हैं सतशब्द से उन सबको नष्ट कर दूँगा। जो जीव मेरा 'सारशब्द' मजबूती से ग्रहण करेगा तुम्हारे सब जालों से मुक्त हो जायेगा। जब जीव मेरे शब्द उपदेश को समझेगा, तो तेरे फ़ैलाये हुये सब भ्रम अज्ञान को त्याग देगा। मैं जीवों को सतनाम समझाऊँगा। साधना कराऊँगा, और उन हंसजीवों का उद्धार कर सतलोक ले जाऊँगा।

सत्यशब्द दृढ़ता से देकर मैं उन हंसजीवों को दया, शील, क्षमा, काम आदि विषयों से रहित सहजता, सम्पूर्ण संतोष और आत्मपूजा आदि अनेक सदगुणों का धनी बना दूँगा। सतपुरूष के सुमरन का जो सार उपाय है। उसमें सतपुरूष का अविचल नाम हंसजीव पुकारेंगे तब तुम्हारे सिर पर पांव रखकर मैं उन हंसजीवों को सतलोक भेज दूँगा। अविनाशी 'अमृतनाम' का प्रचार-प्रसार करके मैं हंसजीवों को चेता कर भ्रममुक्त कर दूँगा।

इसलिये धर्मरायनिरंजन, मेरी बात मन लगाकर सुन, इस प्रकार मैं तुम्हारा मानमर्दन करूँगा। जो मनुष्य विधिपूर्वक सदगुरू से दीक्षा लेकर नाम को प्राप्त करेगा उसके पास काल नहीं आता। सत्यपुरूष के नामज्ञान से हंसजीव को संधि हुआ देखकर कालनिरंजन भी उसको सिर झुकाता है।

यह सुनते ही कालनिरंजन भयभीत हो गया। उसने हाथ जोड़कर विनती की - तात, आप दया करने वाले हो इसलिये मुझ पर इतनी कृपा करो। सतपुरूष ने मुझे शाप दिया है कि मैं नित्य लाखों जीव खाऊँ यदि संसार के सभी जीव सत्यलोक चले गये, तो मेरी भूख कैसे मिटेगी? फ़िर सतपुरूष ने मुझ पर दया की, और भवसागर का राज्य मुझे दिया। आप भी मुझ पर कृपा करो, और जो मैं माँगता हूँ वह वर मुझे दीजिये। सतयुग, त्रेता और द्वापर इन तीनों में से थोड़े जीव सत्यलोक में जायें लेकिन जब कलियुग आये, तो आपकी शरण में बहुत जीव जायें । ऐसा पक्का वचन मुझे देकर ही आप संसार में जायें।

मैंने कहा - कालनिरंजन, तुमने ये छल-मिथ्या का जो प्रपंच फ़ैलाया है, और तीनों युगों में जीव को दुख में डाल दिया। मैंने तुम्हारी विनती जान ली अरे अभिमानी काल, तुम मुझे ठगते हो जैसी विनती तुमने मुझसे की वह मैंने तुम्हें बख्श दी लेकिन चौथायुग यानी कलियुग जब आयेगा, तब मैं जीवों के उद्धार के लिये अपने वंश यानी सन्तों को भेजूँगा।

आठअंश सुरति संसार में जाकर प्रकट होंगे उसके पीछे फ़िर नये और उत्तमस्वरूप सुरति 'नौतम' धर्मदास के घर जाकर प्रकट होंगे। सतपुरूष के वे बयालीस अंश जीवउद्धार के लिये संसार में आयेंगे। वे कलियुग में व्यापक रूप से पंथ प्रकट कर चलायेंगे, और जीव को ज्ञान प्रदान कर सतलोक भेजेंगे। वे बयालीस अंश जिस जीव को सत्यशब्द का उपदेश देंगे मैं सदा उनके साथ रहूँगा तब वह जीव यमलोक नहीं जायेगा, और कालजाल से मुक्त रहेगा।

निरंजन बोला - साहिब, आप पंथ चलाओ, और भवसागर से उद्धार कर जीव को सतलोक ले जाओ। जिस जीव के हाथ में मैं अंश-वंश की छाप (नाम मोहर) देखूँगा उसे मैं सिर झुकाकर प्रणाम करूँगा। सतपुरूष की बात को मैंने मान लिया। परन्तु मेरी भी एक विनती है आप एकपंथ चलाओगे, और जीवों को नाम देकर सत्यलोक भिजवाओगे तब मैं बारहपंथ (नकली) बनाऊँगा जो आपकी ही बात करते हुये, मतलब आपके जैसे ही ज्ञान की बात मगर फ़र्जी, ज्ञान देंगे, और अपने आपको कबीरपंथी ही कहेंगे। मैं बारह यम संसार में भेजूँगा, और आपके नाम से पंथ चलाऊँगा।

मृतुअंधा नाम का मेरा एक दूत सुकृत धर्मदास के घर जन्म लेगा। पहले मेरा दूत धर्मदास के घर जन्म लेगा, इसके बाद आपका अंश वहाँ आयेगा। इस प्रकार मेरा वह दूत जन्म लेकर जीवों को भरमायेगा, और जीवों को सत्यपुरूष का नामउपदेश (मगर नकली प्रभावहीन) देकर समझायेगा। उन बारह पंथ के अंतर्गत जो जीव आयेंगे वे मेरे मुख में आकर मेरा ग्रास बनेंगे। मेरी इतनी विनती मानकर मेरी बात बनाओ, और मुझ पर कृपा करके मुझे क्षमा कर दो।

द्वापर युग का अंत और कलियुग की शुरूआत जब होगी, तब मैं बौद्धशरीर धारण करूँगा। इसके बाद मैं उडीसा के राजा इंद्रमन के पास जाऊँगा, और अपना नाम जगन्नाथ धराऊँगा। राजा इन्द्रमन जब मेरा अर्थात जगन्नाथ मंदिर समुद्र के किनारे बनवायेगा तब उसे समुद्र का पानी ही गिरा देगा उससे टकरा कर बहा देगा। इसका विशेष कारण यह होगा कि त्रेतायुग में मेरे विष्णु का अवतार राम वहाँ आयेगा, और वह समुद्र से पार जाने के लिये समुद्र पर पुल बाँधेगा। इसी शत्रुता के कारण समुद्र उस मंदिर को डुबा देगा।

अतः ज्ञानीजी, आप ऐसा विचार बनाकर पहले वहाँ समुद्र के किनारे जाओ। आपको देखकर समुद्र रुक जायेगा आपको लाँघकर समुद्र आगे नहीं जायेगा। इस प्रकार मेरा वहाँ मंदिर स्थापित करो, उसके बाद अपना अंश भेजना। आप भवसागर में अपना मतपंथ चलाओ, और सत्यपुरूष के सतनाम से जीवों का उद्धार करो, और अपने मतपंथ का चिह्न छाप मुझे बता दो, तथा सत्यपुरूष का नाम भी सुझा समझा दो। बिना इस छाप के जो जीव भवसागर के घाट से उतरना चाहेगा वह हंस के मुक्तिघाट का मार्ग नहीं पायेगा।

मैंने कहा - निरंजन, जैसा तुम मुझसे चाहते हो, वैसा तुम्हारे चरित्र को मैंने अच्छी तरह समझ लिया है। तुमने बारह पंथ चलाने की जो बात कही है, वह मानो तुमने अमृत में विष डाल दिया है। तुम्हारे इस चरित्र को देखकर तुम्हें मिटा ही डालूँ, और अब पलट कर अपनी कला दिखाऊँ, तथा यम से जीव का बँधन छुडाकर अमरलोक ले जाऊँ। मगर सतपुरूष का आदेश ऐसा नहीं है। यही सोचकर मैंने निश्चय किया है कि अमरलोक उस जीव को ले जाकर पहुँचाऊँगा जो मेरे सत्यशब्द को मजबूती से ग्रहण करेगा।

अन्यायीनिरंजन, तुमने जो बारहपंथ चलाने की माँग कही है, वह मैंने तुमको दी। पहले तुम्हारा दूत धर्मदास के यहाँ प्रकट होगा, पीछे से मेरा अंश आयेगा। समुद्र के किनारे मैं चला जाऊँगा, और जगन्नाथ मंदिर भी बनवाऊँगा। उसके बाद अपना सत्यपंथ चलाऊँगा, और जीवों को सत्यलोक भेजूँगा।

निरंजन बोला - ज्ञानीजी, आप मुझे सत्यपुरूष से अपने मेल का छाप निशान दीजिये, जैसी पहचान आप अपने हंसजीवों को दोगे। जो जीव मुझको उसी प्रकार की निशान पहचान बतायेगा, उसके पास काल नहीं आयेगा अतः साहिब दया करके सतपुरूष की नाम निशानी मुझे दें।

मैंने कहा - धर्मरायनिरंजन, जो मैं तुम्हें सत्यपुरूष के मेल की निशानी समझा दूँ, तो तुम जीवों के उद्धार कार्य में विघ्न पैदा करोगे तुम्हारी इस चाल को मैंने समझ लिया। काल, तुम्हारा ऐसा कोई दाव मुझ पर नहीं चलने वाला। धर्मराय, मैंने तुम्हें साफ़ शब्दों में बता दिया कि अपना `अक्षरनाम' मैंने गुप्त रखा है। जो कोई हमारा नाम लेगा तुम उसे छोडकर अलग हो जाना जो तुम हंसजीवों को रोकोगे, तो काल तुम रहने नहीं पाओगे।

धर्मरायनिरंजन बोला - ज्ञानीजी, आप संसार में जाईये, और सत्यपुरूष के नाम द्वारा जीवों को उद्धार करके ले

जाईये। जो हंसजीव आपके गुण गायेगा, मैं उसके पास कभी नहीं आऊँगा। जो जीव आपकी शरण में आयेगा वह मेरे सिर पर पाँव रखकर भवसागर से पार होगा। मैंने तो व्यर्थ आपके सामने मूर्खता की, तथा आपको पिता समान समझ कर लड़कपन किया। बालक करोडों अवगुण वाला होता है, परन्तु पिता उनको हृदय में नहीं रखता। यदि अवगुणों के कारण पिता बालक को घर से निकाल दे, फ़िर उसकी रक्षा कौन करेगा। इसी प्रकार मेरी मूर्खता पर यदि आप मुझे निकाल देंगे, तो फ़िर मेरी रक्षा कौन करेगा?

ऐसा कहकर निरंजन ने उठकर शीश नवाया, और मैंने संसार की और प्रस्थान किया।

कबीर ने धर्मदास से कहा - जब मैंने निरंजन को व्याकुल देखा, तब मैंने वहाँ से प्रस्थान किया, और भवसागर की ओर चला आया।

राम-नाम की उत्पत्ति

कबीर साहब बोले - धर्मदास, भवसागर की ओर चलते हुये मैं सबसे पहले ब्रह्मा के पास आया, और ब्रह्मा को आदिपुरूष का शब्द उपदेश प्रकट किया। तब ब्रह्मा ने मन लगाकर सुनते हुये आदिपुरूष के चिह्न लक्षण के बारे में बहुत पूछा। उस समय निरंजन को संदेह हुआ कि ब्रह्मा मेरा बडा लड़का है, ज्ञानी की बातों में आकर वह उनके पक्ष में न चला जाय। तब निरंजन ने ब्रह्मा की बुद्धि फ़ेरने का उपाय किया क्योंकि निरंजन मन के रूप में सबके भीतर बैठा हुआ है अतः वह ब्रह्मा के शरीर में भी विराजमान था उसने ब्रह्मा की बुद्धि को अपनी ओर फ़ेर दिया।

(सब जीवों के भीतर 'मनस्वरूप' निरंजन का वास है जो सबकी बुद्धि अपने अनुसार घुमाता फ़िराता है)

बुद्धि फ़िरते ही ब्रह्मा ने मुझसे कहा - वह ईश्वर निराकार, निर्गुण, अविनाशी, ज्योतिस्वरूप और शून्य का वासी है उसी पुरूष यानी ईश्वर का वेद वर्णन करता है। वेद आज्ञानुसार ही मैं उस पुरूष को मानता और समझता हूँ।

जब मैंने देखा कि कालनिरंजन ने ब्रह्मा की बुद्धि को फ़ेर दिया है, और उसे अपने पक्ष में मजबूत कर लिया है, तो मैं वहाँ से विष्णु के पास आ गया। विष्णु को भी वही आदिपुरूष का शब्दउपदेश किया परन्तु काल के वश में होने के कारण विष्णु ने भी उसे ग्रहण नहीं किया।

विष्णु ने मुझसे कहा - मेरे समान अन्य कौन है मेरे पास चार पदार्थ यानी फ़ल हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष मेरे अधिकार में है, उनमें से जो चाहे, मैं किसी जीव को दूँ।

मैंने कहा - विष्णु सुनो, तुम्हारे पास यह कैसा मोक्ष है? मोक्ष अमरपद तो मृत्यु के पार होने से यानी आवागमन छूटने पर ही प्राप्त होता है। तुम स्वयं स्थिर शांत नहीं हो तो दूसरों को स्थिर शांत कैसे करोगे? झूठी साक्षी, झूठी गवाही से तुम भला किसका भला करोगे, और इस अवगुण को कौन भरेगा?

मेरी निर्भीक सत्यवाणी सुनकर विष्णु भयभीत होकर रह गये, और अपने हृदय में इस बात का बहुत डर माना। उसके बाद मैं नागलोक चला गया, और वहाँ शेषनाग से अपनी कुछ बातें कहने लगा।

मैंने कहा - आदिपुरूष का भेद कोई नहीं जानता है, सभी काल की छाया में लगे हुये हैं और अज्ञानता के कारण काल के मुँह में जा रहे हैं। भाई, अपनी रक्षा करने वाले को पहचानो यहाँ काल से तुम्हें कौन छुड़ायेगा। ब्रह्मा, विष्णु और रूद्र जिसका ध्यान करते हैं, और वेद जिसका गुण दिन-रात गाते हैं। वही आदिपुरूष तुम्हारी रक्षा करने वाले हैं वही तुम्हें इस भवसागर से पार करेंगे। रक्षा करने वाला और कोई नहीं है। विश्वास करो मैं तुम्हें उनसे मिलाता हूँ साक्षात्कार कराता हूँ।

लेकिन विष खाने से उत्पन्न शेषनाग का बहुत तेज स्वभाव था अतः उसके मन में मेरे वचनों का विश्वास नहीं हुआ। जब ब्रह्मा, विष्णु और शेषनाग ने मेरे द्वारा सत्यपुरूष का संदेश मानने से इंकार कर दिया तब मैं शंकर के पास गया परन्तु शंकर को भी सत्यपुरूष का यह संदेश अच्छा नहीं लगा।

शंकर ने कहा - मैं तो निरंजन को मानता हूँ, और बात को मन में नहीं लाता।

तब वहाँ से मैं भवसागर की ओर चल दिया।

कबीर साहब आगे बोले - जब मैं इस भवसागर यानी मृत्युमंडल में आया तब मैंने यहाँ किसी जीव को सतपुरूष की भक्ति करते नहीं देखा। ऐसी स्थिति में सतपुरूष का ज्ञानउपदेश किससे कहता? जिससे कहूँ वह अधिकांश तो यम के वेश में दिखायी पडे। विचित्र बात यह थी कि जो घातक विनाश करने वाला कालनिरंजन है लोगों को उसका तो विश्वास है, और वे उसी की पूजा करते हैं, और जो रक्षा करने वाला है उसकी ओर से वे जीव उदास हैं उसके पक्ष में न बोलते हैं, न सुनते हैं। जीव जिस काल को जपता है वही उसे धरकर खा जाता है। तब मेरे शब्दउपदेश से उसके मन में चेतना आती है। जीव जब दुखी होता है तब ज्ञान पाने की बात उसकी समझ में आती है लेकिन उससे पहले जीव मोहवश कुछ देखता समझता नहीं।

फिर ऐसा भाव मेरे मन में उपजा कि कालनिरंजन की शाखा वंश संतति को मिटा डालूँ, और उसे अपना प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाऊँ। यमनिरंजन से जीवों को छुडा लूँ, तथा उन्हें अमरलोक भेज दूँ। जिनके कारण मैं शब्दउपदेश को रटते हुये फ़िरता हूँ वे ही जीव मुझे पहचानते तक नहीं। सब जीव काल के वश में पडे हैं, और सत्यपुरूष के नाम उपदेशरूपी अमृत को छोडकर विषयरूपी विष ग्रहण कर रहे हैं। लेकिन सत्यपुरूष का आदेश ऐसा नहीं है। यही सोचकर मैंने अपने मन में निश्चय किया कि अमरलोक उसी जीव को लेकर पहुँचाऊँ जो मेरे सारशब्द को मजबूती से ग्रहण करे।

धर्मदास इसके आगे जैसा चरित्र हुआ वह तुम ध्यान लगाकर सुनो। मेरी बातों से विचलित होकर ब्रह्मा, विष्णु, शंकर और ब्रह्मा के पुत्र सनकादिक सबने मिलकर शून्य में ध्यान समाधि लगायी। समाधि में उन्होंने प्रार्थना की - हे ईश्वर, हम किस 'नाम' का सुमरन करें, और तुम्हारा कौन सा नाम ध्यान के योग्य है?

धर्मदास, जैसे सीप, स्वाति नक्षत्र का स्नेह अपने भीतर लाती है ठीक उसी प्रकार उन सबने ईश्वर के प्रति प्रेमभाव से शून्य में ध्यान लगाया। उसी समय निरंजन ने उनको उत्तर देने का उपाय सोचा, और 'शून्यगुफ़ा' से अपना शब्द उच्चारण किया। तब इनकी ध्यान समाधि में ररां यानी 'रा' शब्द बहुत बार उच्चारित हुआ। उसके आगे म अक्षर उसकी पत्नी माया यानी अष्टांगी ने मिला दिया। इस तरह रा और म दोनों अक्षरों को बराबर मिलाने पर राम शब्द बना।

रामनाम उन सबको बहुत अच्छा लगा, और सबने रामनाम सुमिरन की ही इच्छा की। बाद में उसी रामनाम को लेकर उन्होंने संसार के जीवों को उपदेश दिया, और सुमिरन कराया। कालनिरंजन और माया के इस जाल को कोई पहचान समझ नहीं पाया, और इस तरह रामनाम की उत्पत्ति हुयी। इस बात को तुम गहरायी से समझो।

धर्मदास बोले - आप पूरे सदगुरू हैं आपका ज्ञान सूर्य के समान है जिससे मेरा सारा अज्ञान अंधेरा दूर हो गया है। संसार में मायामोह का घोर अंधेरा है जिसमें विषयविकारी लालची जीव पड़े हुये हैं। जब आपका ज्ञानरूपी सूर्य प्रकट होता है और उससे जीव का मोह अंधकार नष्ट हो जाये, यही आपके शब्दउपदेश के सत्य होने का प्रमाण है। मेरे धन्य भाग्य जो मैंने आपको पाया आपने मुझ अधम को जगा लिया। अब आप वह कथा कहें जब आपने सतयुग में जीवों को मुक्त किया।

संसार में बहुत काल-कलेश दुख-पीड़ा है

कबीर साहब बोले - धर्मदास, सतयुग में जिन जीवों को मैंने नामज्ञान का उपदेश किया था। सतयुग में मेरा नाम 'सतसुकृत' था। मैं उस समय राजा धोंधल के पास गया, और उसे सारशब्द का उपदेश सुनाया। उसने मेरे ज्ञान को स्वीकार किया, और उसे मैंने 'नाम' दिया। इसके बाद में मथुरा नगरी आया, यहाँ मुझे खेमसरी नाम की स्त्री मिली। उसके साथ अन्य स्त्री, वृद्ध और बच्चे भी थे।

खेमसरी बोली - हे पुरूष पुरातन, आप कहाँ से आये हो?

मैंने उससे सत्यपुरूष, सत्यलोक, तथा कालनिरंजन आदि का वर्णन किया। खेमसरी ने सुना, और उसके मन में सत्यपुरूष के लिये प्रेम उत्पन्न हुआ। उसके मन में ज्ञानभाव आया, और उसने कालनिरंजन की चाल को भी समझा। पर खेमसरी के मन में एक संदेह था कि अपनी आँखों से सत्यलोक देखूँ, तब ही मेरे मन में विश्वास हो।

तब मैंने (सतसुकृत) उसके शरीर को वहीं रहते हुये उसकी आत्मा को एकपल में सतलोक पहुँचा दिया। फ़िर अपनी देह में आते ही खेमसरी सत्यलोक को याद करके पछताने लगी, और बोली - साहिब, आपने जो देश दिखाया है मुझे उसी देश अमरलोक ले चलो। यहाँ तो बहुत काल-कलेश, दुख, पीड़ा है, यहाँ सिर्फ़ झूठी मोहमाया का पसारा है।

मैंने कहा - खेमसरी, जबतक आयु पूरी नहीं हो जाती, तबतक तुम्हें सत्यलोक नहीं ले जा सकता। इसलिये अपनी आयु रहने तक मेरे दिये हुये सत्यनाम का सुमरन करो। अब क्योंकि तुमने सत्यलोक देखा है, इसलिये आयु रहने तक तुम दूसरे जीवों को सारशब्द का उपदेश करो।

जब किसी ज्ञानवान मनुष्य के द्वारा एक भी जीव सत्यपुरूष की शरण में आता है, तब ऐसा ज्ञानवान मनुष्य सत्यपुरूष को बहुत प्रिय होता है। जैसे कोई गाय शेर के मुख में जाती हो, यानी शेर उसे खाने वाला हो, और तब कोई बलवान मनुष्य आकर उसे छुड़ा ले, तो सभी उसकी बढ़ाई करते हैं। जैसे बाघ अपने चंगुल में फ़ँसी गाय को सताता, डराता, भयभीत करता हुआ मार डालता है ऐसे ही कालनिरंजन जीवों को दुख देता हुआ मारकर खा जाता है। इसलिये जो भी मनुष्य एक भी जीव को सत्यपुरूष की भक्ति में लगाकर कालनिरंजन से बचा लेता है तो वह

मनुष्य करोड़ों गाय को बचाने के समान पुण्य पाता है।

यह सुनकर खेमसरी मेरे चरणों में गिर पड़ी, और बोली - साहिब, मुझ पर दया कीजिये, और मुझे इस क्रूर रक्षक के वेश में भक्षक कालनिरंजन से बचा लीजिये।

मैंने कहा - खेमसरी, यह कालनिरंजन का देश है। उसके जाल में फ़ँसने का जो अंदेशा है, वह सत्यपुरूष के नाम से दूर हो जाता है।

खेमसरी बोली - साहिब, आप मुझे वह नामदान (दीक्षा) दीजिये, और काल के पंजों से छुड़ाकर अपनी (गुरू की) आत्मा बना लीजिये। हमारे घर में भी जो अन्य जीव हैं, उन्हें भी ये नाम दीजिये।

धर्मदास, तब मैं खेमसरी के घर गया, और सभी जीवों को सत्यनाम उपदेश किया।
सब नर-नारी मेरे चरणों में गिर गये।

खेमसरी अपने घर वालों से बोली - भाई, यदि अपने जीवन की मुक्ति चाहते हो, तो आकर सदगुरू से शब्दउपदेश गृहण करो। ये यम के फ़ंदे से छुड़ाने वाले हैं, तुम यह बात सत्य जानो।

खेमसरी के वचनों से सबको विश्वास हो गया, और सबने विनती की - हे साहिब, हे बन्दीछोड़ गुरू, हमारा उद्धार करो, जिससे यम का फ़ंदा नष्ट हो जाये, और जन्म-जन्म का कष्ट (जीवन-मरण) मिट जाये।

तब मैंने उन सबको नामदान करते हुये ध्यानसाधना (नामजप) के बारे में, समझाया और सारनाम से हंसजीव को बचाया।

कबीर साहब बोले - धर्मदास, इस तरह सतयुग में मैं बारह जीवों को नाम उपदेश कर सत्यलोक चला गया।
सत्यलोक में रहने वाले जीवों की शोभा मुख से कही नहीं जाती। वहाँ एक हंस का दिव्यप्रकाश सोलह सूर्यों के बराबर है।

फ़िर मैंने कुछ समय तक सत्यलोक में निवास किया, और दोबारा भवसागर में आकर अपने दीक्षित हंस जीवों धोंधल, खेमसरी आदि को देखा। मैं रात-दिन संसार में गुप्तरूप से रहता हूँ पर मुझको कोई पहचान नहीं पाता।

फ़िर सतयुग बीत गया, और त्रेता आया, तब त्रेता में मैं मुनीन्द्र स्वामी के नाम से संसार में आया। मुझे देखकर कालनिरंजन को बड़ा अफ़सोस हुआ।

उसने सोचा - इन्होंने तो मेरे भवसागर को ही उजाड़ दिया, ये जीव को सत्यनाम का उपदेश कर सत्यपुरूष के दरबार में ले जाते हैं। मैंने कितने छलबल के उपाय किये पर उससे ज्ञानी को कोई डर नहीं हुआ, वे मुझसे नहीं डरते हैं। ज्ञानी के पास सत्यपुरूष का बल है, उससे मेरा बस इन पर नहीं चलता है, और न ही ये मेरे कालमाया के जाल में फ़ँसते हैं।

कबीर साहब बोले - धर्मदास, जैसे सिंह को देखकर हाथी का ह्रदय भय से कांपने लगता है, और वह प्रथ्वी पर गिर

पड़ता है वैसे ही सत्यपुरूष के नाम से कालनिरंजन भय से थरथर कांपता है।

कबीर और रावण

त्रेतायुग में जब मुनीन्द्र स्वामी (त्रेतायुग में कबीर का नाम) प्रथ्वी पर आये, और उन्होंने जाकर जीवों से कहा - यमरूपी काल से तुम्हें कौन छुड़ायेगा?

तब वे अज्ञानी भ्रमित जीव बोले - हमारा कर्ताधर्ता स्वामी पुराणपुरूष (कालनिरंजन) है। वह पुराणपुरूष विष्णु हमारी रक्षा करने वाला है, और हमें यम के फ़ंदे से छुड़ाने वाला है।

कबीर बोले - धर्मदास, उन अज्ञानी जीवों में से कोई तो अपनी रक्षा और मुक्ति की आस शंकर से लगाये हुये था कोई चंडी देवी को ध्याता गाता था। क्या कहूँ ये वासना का लालची जीव अपनी सदगति भूलकर पराया ही हो गया, और सत्यपुरूष को भूल गया तथा तुच्छ देवी-देवताओं के हाथ लोभवश बिक गया। कालनिरंजन ने सब जीवों को प्रतिदिन पापकर्म की कोठरी में डाला हुआ है, और सबको अपने मायाजाल में फ़ँसाकर मार रहा है।

यदि सत्यपुरूष की ऐसी आज्ञा होती तो कालनिरंजन को अभी मिटाकर जीवों को भवसागर के तट पर लाऊँ लेकिन यदि अपने बल से ऐसा करूँ तो सत्यपुरूष का वचन नष्ट होता है, इसलिये उपदेश द्वारा ही जीवों को सावधान करूँ। कितनी विचित्र बात है कि जो (कालनिरंजन) इस जीव को दुख देता, खाता है वह जीव उसी की पूजा करता है। इस प्रकार बिना जाने यह जीव यम के मुख में जाता है।

धर्मदास, तब चारों तरफ़ घूमते हुये मैं लंका देश में आया, वहाँ मुझे विचित्रभाट नाम का श्रद्धालु मिला। उसने मुझसे भवसागर से मुक्ति का उपाय पूछा, और मैंने उसे ज्ञानउपदेश दिया। उस उपदेश को सुनते ही विचित्रभाट का संशय दूर हो गया, और वह मेरे चरणों में गिर गया। मैंने उसके घर जाकर उसे दीक्षा दी। विचित्रभाट की स्त्री राजा रावण के महल गयी, और जाकर रानी मंदोदरी को सब बात बतायी।

उसने मंदोदरी से कहा - महारानी जी, हमारे घर एक सुन्दर महामुनि श्रेष्ठयोगी आये हैं। उनकी महिमा का मैं क्या वर्णन करूँ, ऐसा सन्तयोगी मैंने पहले कभी नहीं देखा। मेरे पति ने उनकी शरण ग्रहण की है, और उनसे दीक्षा ली है, तथा इसी में अपने जीवन को सार्थक समझा है।

यह बात सुनते ही मंदोदरी में भक्तिभाव जागा, और वह मुनीन्द्र स्वामी के दर्शन करने को व्याकुल हो गयी। वह दासी को साथ लेकर स्वर्ण, हीरा, रत्न आदि लेकर विचित्रभाट के घर आयी, और उन्हें अर्पित करते हुये मेरे चरणों में शीश झुकाया।

मैंने उसको आशीर्वाद दिया।

मंदोदरी बोली - आपके दर्शन से मेरा दिन आज बहुत शुभ हुआ मैंने ऐसा तपस्वी पहले कभी नहीं देखा कि जिनके सब अंग सफ़ेद और वस्त्र भी श्वेत हैं। स्वामी जी, मैं आपसे विनती करती हूँ मेरे जीव (आत्मा) का कल्याण जिस

तरह हो, वह उपाय मुझे कहो। मैं अपने जीवन के कल्याण के लिये अपने कुल और जाति का भी त्याग कर सकती हूँ। हे समर्थस्वामी, अपनी शरण में लेकर मुझ अनाथ को सनाथ करो, भवसागर में डूबती हुयी मुझको संभालो। आप मुझे बहुत दयालु और प्रिय लगते हो, आपके दर्शन मात्र से मेरे सभी भ्रम दूर हो गये।

मैंने कहा - मंदोदरी सुनो, सत्यपुरूष के नामप्रताप से यम की बेड़ी कट जाती है। तुम इसे ज्ञानदृष्टि से समझो, मैं तुम्हें खरा (सत्यपुरूष) और खोटा (कालनिरंजन) समझाता हूँ। सत्यपुरूष असीम अजर अमर हैं तथा तीनलोक से न्यारे हैं, अलग हैं। उन सत्यपुरूष का जो कोई ध्यान-सुमरन करे, वह आवागमन से मुक्त हो जाता है।

मेरे ये वचन सुनते ही मंदोदरी का सब भ्रम, भय, अज्ञान दूर हो गया, और उसने पवित्रमन से प्रेमपूर्वक नामदान लिया। मंदोदरी इस तरह गदगद हुयी, मानो किसी कंगाल को खजाना मिल गया हो। फ़िर रानी चरण स्पर्श कर महल को चली गयी। मंदोदरी ने विचित्रभाट की स्त्री को समझा कर हंसदीक्षा के लिये प्रेरित किया तब उसने भी दीक्षा ली।

धर्मदास, फ़िर मैं रावण के महल से आया, और मैंने द्वारपाल से कहा - मैं तुमसे एक बात कहता हूँ, अपने राजा को मेरे पास लेकर आओ।

द्वारपाल विनयपूर्वक बोला - राजा रावण बहुत भयंकर है, उसमें शिव का बल है वह किसी का भय नहीं मानता, और किसी बात की चिंता नहीं करता। वह बड़ा अहंकारी और महान क्रोधी है, यदि मैं उससे जाकर आपकी बात कहूँगा, तो वह उल्टा मुझे ही मार डालेगा।

मैंने कहा - तुम मेरा वचन सत्य मानो तुम्हारा बालबांका भी नहीं होगा अतः निर्भीक होकर रावण से ऐसा जाकर कहो, और उसको शीघ्र बुलाकर लाओ।

द्वारपाल ने ऐसा ही किया।

वह रावण के पास जाकर बोला - हे महाराज, हमारे पास एक सिद्ध (सन्त) आया है। उसने मुझसे कहा है कि अपने राजा को लेकर आओ।

रावण क्रोध से बोला - द्वारपाल, तू निरा बुद्धिहीन ही है। तेरी बुद्धि को किसने हर लिया है, जो यह सुनते ही तू मुझे बुलाने दौड़ा-दौड़ा चला आया। मेरा दर्शन शिव के सुत, गण आदि भी नहीं पाते, और तूने मुझे एक भिक्षुक को बुलाने पर जाने को कहा। मेरी बात सुन, और उस सिद्ध का रूप वर्णन मुझे बता। वह कौन है, कैसा है, क्या वेश है?

द्वारपाल बोला - हे राजन, उनका श्वेत उज्जवल स्वरूप है। उनकी श्वेत ही माला तथा श्वेत तिलक अनुपम है, और श्वेत ही वस्त्र तथा श्वेत साजसामान है। चन्द्रमा के समान उसका स्वरूप प्रकाशवान है।

मंदोदरी बोली - हे राजा रावण, जैसा द्वारपाल ने बताया वह सिद्धसन्त परमात्मा के समान सुशोभित है। आप शीघ्र जाकर उनके चरणों में प्रणाम करो तो आपका राज्य अटल हो जायेगा। हे राजन, इस झूठी मान, बड़ाई के अहम को त्याग कर आप ऐसा ही करें।

मंदोदरी की बात सुनते ही रावण इस तरह भड़का, मानो जलती हुयी आग में घी डाल दिया गया हो। रावण तुरन्त हाथ में शस्त्र लेकर चला कि जाकर उस सिद्ध का माथा काटूँगा। जब उसका शीश गिर पड़े। तब देखें, वह भिक्षुक मेरा क्या कर लेगा?

ऐसा सोचते हुये रावण बाहर मेरे पास आया, और उसने सत्तर बार पूरी शक्ति से मुझ पर शस्त्र चलाया। मैंने उसके शस्त्रप्रहार को हर बार एक तिनके की ओट पर रोका अर्थात रावण वह तिनका भी नहीं काट सका।
मैंने तिनके की ओट इस कारण की कि रावण बहुत अहंकारी है। इस कारण अपने शक्तिशाली प्रहारों से जब रावण तिनका भी न काट पायेगा तो अत्यन्त लज्जित होगा, और उसका अहंकार नष्ट हो जायेगा।

तब यह तमाशा देखती हुयी (मेरा बलप्रताप जान कर) मंदोदरी रावण से बोली - स्वामी, आप झूठा अहंकार और लज्जा त्याग कर मुनीन्द्र स्वामी के चरण पकड़ लो जिससे आपका राज्य अटल हो जायेगा।

यह सुनकर खिसियाया हुआ रावण बोला - मैं जाकर शिव की सेवा-पूजा करूँगा जिन्होंने मुझे अटल राज्य दिया, मैं उनके ही आगे घुटने टेकूँगा, और हरपल उन्हीं को दण्डवत करूँगा।

मैंने उसे पुकार कर कहा - रावण, तुम बहुत अहंकार करने वाले हो। तुमने हमारा भेद नहीं समझा इसलिये आगे की पहचान के रूप में तुम्हें एक भविष्यवाणी कहता हूँ। तुमको रामचन्द्र मारेंगे, और तुम्हारा माँस कुत्ता भी नहीं खायेगा। तुम इतने नीचभाव वाले हो।

कबीर साहब बोले - धर्मदास, मुनीन्द्र स्वामी के रूप में मैंने अहंकारी रावण को अपमानित किया, और फ़िर अयोध्यानगरी की ओर प्रस्थान किया। तब रास्ते में मुझे मधुकर नाम का एक गरीब ब्राहमण मिला, वह मुझे प्रेमपूर्वक अपने घर ले गया, और मेरी बहुत प्रकार से सेवा की। गरीब मधुकर ज्ञानभाव में स्थिरबुद्धि वाला था, उसका लोकवेद का ज्ञान बहुत अच्छा था। तब मैंने उसे सत्यपुरूष और सत्यनाम के बारे में बताया, जिसे सुनकर उसका मन प्रसन्नता से भर गया।

वह बोला - हे परमसन्त स्वरूप स्वामी, मैं भी उस अमृतमय सत्यलोक को देखना चाहता हूँ।

तब उसके सेवाभाव से प्रसन्न होकर 'अच्छा' ऐसा कहते हुये मैं उसके शरीर को वहीं रहा छोड़कर उसके जीवात्मा को सत्यलोक ले गया। अमरलोक की अनुपम शोभा-छटा देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ, और गदगद होकर मेरे चरणों में गिर पड़ा।

और बोला - स्वामी, आपने सत्यलोक देखने की मेरी प्यास बुझा दी, अब आप मुझे संसार में ले चलो। जिससे मैं अन्य जीवों को यहाँ लाने के लिये उपदेश (गवाही) करूँ, और जो जीव घर-गृहस्थी के अंतर्गत आते हैं उन्हें भी सत्य बताऊँ।

धर्मदास, जब मैं उसके जीवात्मा को लेकर संसार में आया, और जैसे ही मधुकर के जीवात्मा ने देह में प्रवेश किया तो उसका शरीर जाग्रत हो गया। मधुकर के घर-परिवार में सोलह अन्य जीव थे।

मधुकर ने उनसे सब बात कही, और मुझसे बोला - साहिब, मेरी विनती सुनो। अब हम सबको सत्यलोक में निवास दीजिये, क्योंकि प्रथ्वी तो यम का देश है। इसमें बहुत दुख है फ़िर भी माया से बँधा जीव अज्ञानवश अँधा हो रहा है। इस देश में कालनिरंजन बहुत प्रबल है। वह सब जीवों को सताता है, और अनेक प्रकार के कष्ट देता हुआ जन्म-मरण का नर्क समान दुख देता है।

काम, क्रोध, तृष्णा और माया बहुत बलवान है, जो इसी कालनिरंजन की रचना है। ये सब महाशत्रु देवता, मुनि आदि सबको व्यापते हैं, और करोङों जीवों को कुचलकर मसल देते हैं। ये तीनों लोक यमनिरंजन का देश हैं, इसमें जीवों को क्षणभर के लिये वास्तविक सुख नहीं है। आप हमारा ये जन्म-जन्म का कलेश मिटाओ, और अपने साथ ले चलो।

तब मैंने उन सबको सत्यपुरूष के नाम का उपदेश देकर हंसदीक्षा से गुरू (की) आत्मा बनाया, और उनकी आयु पूरी हो जाने पर उनको सत्यलोक भेज दिया। उन सोलह जीवों को सत्यलोक जाते हुये देखकर संसारीजीव के लिये विकराल भयंकर यमदूत उदास खङे देखते रहे। उन्हें ऊपर जाते देखकर वे सब विवश और बेहद उदास हो गये।

वे सब जीव सत्यपुरूष के दरबार में पहुँच गये जिन्हें देखकर सत्यपुरूष के अंश और अन्य मुक्त हंसजीव बहुत प्रसन्न हुये। सत्यपुरूष ने उन सोलह हंसजीवों को अमरवस्त्र पहनाया। स्वर्ण के समान प्रकाशवान अपनी अमरदेह के स्वरूप को देखकर उन हंसजीवों को बहुत सुख हुआ। सत्यलोक में हरेक हंसजीव का दिव्यप्रकाश सोलह सूर्य के समान है। वहाँ उन्होंने अमृत (अमीरस) का भोजन किया, और अगर (चंदन) की सुगन्ध से उनका शरीर शीतल होकर महकने लगा।

इस तरह त्रेतायुग में मेरे (मुनीन्द्र स्वामी नाम से) द्वारा ज्ञानउपदेश का प्रचार-प्रसार हुआ, और सत्यपुरूष के नामप्रभाव से हंसजीव मुक्त होकर सत्यलोक गये।

कबीर और रानी इन्द्रमती

त्रेतायुग समाप्त हुआ, द्वापर-युग आ गया।

तब फ़िर कालनिरंजन का प्रभाव हुआ, और फ़िर सत्यपुरूष ने ज्ञानीजी को बुलाकर कहा - ज्ञानी, तुम शीघ्र संसार में जाओ, और कालनिरंजन के बँधनों से जीवों का उद्धार करो। कालनिरंजन जीवों को बहुत पीङा दे रहा है, जाकर उसकी फ़ाँस काटो।

मैंने सत्यपुरूष की बात सुनकर उनसे कहा - आप प्रमाणित स्पष्ट शब्दों में आज्ञा करो तो मैं कालनिरंजन को मारकर सब जीवों को सत्यलोक ले आता हूँ। बारबार ऐसा करने संसार में क्या जाऊँ।

सत्यपुरूष बोले - योगसंतायन, सुनो, सारशब्द का उपदेश सुनाकर जीव को मुक्त कराओ। जो अब जाकर कालनिरंजन को मारोगे, तो तुम मेरा वचन ही भंग करोगे। अब तो अज्ञानी जीव काल के जाल में फ़ँसे पङे हैं, और उसमें ही उन्हें मोहवश सुख भास रहा है। लेकिन जब तुम उन्हें जाग्रत करोगे, तब उन्हें आनन्द का अहसास होगा।

जब तुम कालनिरंजन का असली चरित्र बताओगे तो सब जीव तुम्हारे चरण पकड़ेंगे। हे ज्ञानी, जीवों का भाव, स्वभाव तो देखो कि ये ज्ञान, अज्ञान को पहचानते समझते नहीं हैं। तुम संसार में 'सहजभाव' से जाकर प्रकट होओ, और जीवों को चेताओ।

तब मैं फ़िर से संसार की तरफ़ चला। इधर आते ही चालाक और प्रपंची कालनिरंजन ने मेरे चरणों में सिर झुका दिया। वह कातर भाव से बोला - अब किस कारण से संसार में आये हो? मैं विनती करता हूँ कि सारे संसार के जीवों को समझाओ ऐसा मत करना। आप मेरे बड़े भाई हो, मैं विनती करता हूँ, सभी जीवों को मेरा रहस्य न बताना।

मैंने कहा - निरंजन सुन, कोई-कोई जीव ही मुझे पहचान पाता है, और मेरी बात समझता है क्योंकि तुमने जीवों को अपने जाल में बहुत मजबूती से फ़ँसाकर ठगा हुआ है।

धर्मदास, ऐसा कहकर मैंने सत्यलोक और सत्यलोक का शरीर छोड़ दिया, और मनुष्यशरीर धारण कर मृत्युलोक में आया उस युग में मेरा नाम करूणामय स्वामी था। तब मैं गिरनार गढ़ आया, जहाँ राजा चन्द्रविजय राज्य करते थे। उस राजा की स्त्री बहुत बुद्धिमान थी, उसका नाम इन्द्रमती था। वह सन्त समागम करती थी, और ज्ञानीसन्तों की पूजा करती थी।

इन्द्रमती अपने स्वभाव के अनुसार महल की ऊँची अटारी पर चढ़ कर रास्ता देखा करती थी यदि रास्ते में उसे कोई साधु जाता नजर आता तो तुरन्त उसको बुलवा लेती थी। इस प्रकार सन्तों के दर्शन हेतु वह अपने शरीर को कष्ट देती थी। वह किसी सच्चेसन्त की तलाश में थी उसके ऐसे भाव से प्रसन्न हम उसी रास्ते पर पहुँच गये। जब रानी की दृष्टि हम पर पड़ी तो उसने तुरन्त दासी को आदरपूर्वक बुलाने भेजा। दासी ने रानी का विनम्र संदेश मुझे सुनाया।

मैंने दासी से कहा - दासी, हम राजा के घर नहीं जायेंगे क्योंकि राज्य के कार्य में झूठी मान, बड़ाई होती है, और साधु का मान बड़ाई से कोई सम्बन्ध नहीं होता अतः मैं नहीं जाऊँगा।

दासी ने रानी से जाकर ऐसा ही कहा।

तब रानी स्वयं दौड़ी-दौड़ी आयी, और मेरे चरणों में अपना शीश रख दिया। फ़िर वह बोली - साहिब, हम पर दया कीजिये, और अपने पवित्र श्रीचरणों से हमारा घर धन्य कीजिये। आपके दर्शन पाकर मैं सुखी हो गयी।

उसका ऐसा प्रेमभाव देखकर हम उसके घर चले गये। रानी भोजन के लिये मुझसे निवेदन करती हुयी बोली - हे प्रभु, भोजन तैयार करने की आज्ञा देकर मेरा सौभाग्य बढ़ायें। आपकी जूठन मेरे घर में पड़े, और बचा भोजन शेष प्रसाद के रूप में मैं खाऊँ।

मैंने कहा - रानी सुनो, पाँच-तत्व (का शरीर) जिस भोजन को पाता है, उसकी भूख मुझे नहीं होती। मेरा भोजन अमृत है, मैं तुम्हें इसको समझाता हूँ। मेरा शरीर प्रकृति के पाँच-तत्व और तीन गुण वाला नहीं है, बल्कि अलग है। पाँच-तत्व, तीन गुण, पच्चीस प्रकृति से तो कालनिरंजन ने मनुष्य शरीर की रचना की है।
स्थान और क्रिया के भेद से कालनिरंजन ने वायु के 'पचासी भाग' किये, इसलिये पिचासी पवन कहा जाता है। इसी

वायु तथा चार अन्यतत्व प्रथ्वी, जल, आकाश, अग्नि से ये मनुष्य शरीर बना है परन्तु मैं इनसे एकदम अलग हूँ।

इस पाँच-तत्व की स्थूलदेह में एक 'आदिपवन' है। आदि का मतलब यहाँ जन्म-मरण से रहित, नित्य, अविनाशी और शाश्वत है, वह चैतन्यजीव है, उसे 'सोऽहंग' बोला जाता है। यह जीव सत्यपुरूष का अंश है। कालनिरंजन ने इसी जीव को भ्रम में डालकर सत्यलोक जाने से रोक रखा है।

कालनिरंजन ऐसा करने के लिये नाना प्रकार के मायाजाल रचता है, और सांसारिक विषयों का लोभ-लालच देकर जीवों को उसमें फ़ँसाता है, और फ़िर खा जाता है। मैं उन्ही जीवों को कालनिरंजन से उद्धार कराने आया हूँ। काल ने पानी, पवन, प्रथ्वी आदि तत्वों से जीव की बनावटीदेह की रचना की, और इस देह में वह जीवों को बहुत दुख देता है। मेरा शरीर कालनिरंजन ने नहीं बनाया। मेरा शरीर 'शब्दस्वरूप' है, जो खुद मेरी इच्छा से बना है।

रानी इन्द्रमती को बहुत आश्चर्य हुआ, और वह बोली - प्रभु, जैसा आपने कहा, ऐसा कहने वाला दूसरा कोई नहीं मिला। दयानिधि, मुझे और भी ज्ञान बताओ, मैंने सुना है कि विष्णु के समान दूसरा कोई ब्रह्मा, शंकर, मुनि आदि भी नहीं है। पाँच-तत्वों के मिलने से यह शरीर बना है, और उन तत्वों के गुण भूख, प्यास, नींद के वश में सभी जीव हैं। प्रभु, आप अगमअपार हो, मुझे बताओ कि ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर से भी अलग आप कहाँ से उत्पन्न हुये हो? ऐसा बताकर मेरी जिज्ञासा शान्त करो।

मैंने कहा - इन्द्रमती, मेरा देश नागलोक (पाताल) मृत्युलोक (प्रथ्वी) और देवलोक (स्वर्ग) इन सबसे अलग है, वहाँ कालनिरंजन को घुसने के अनुमति नहीं है। इस प्रथ्वी पर चन्द्रमा, सूर्य है, पर सत्यलोक में सत्यपुरूष के एक रोम का प्रकाश करोडों चन्द्रमा के समान है तथा वहाँ के हंसजीव (मुक्त होकर गयी आत्मायें) का प्रकाश सोलह सूर्य के बराबर है। उन हंसजीवों में अगर (चन्दन) के समान सुगन्ध आती है, और वहाँ कभी रात नहीं होती।

रानी इन्द्रमती घबरा कर बोली - प्रभु, आप मुझे इस यम कालनिरंजन से छुडा लो, मैं अपना समस्त राजपाट आप पर न्योछावर करती हूँ। मैं अपना सब धन-संपत्ति का त्याग करती हूँ, हे बन्दीछोड, मुझे अपनी शरण में लो।

मैंने कहा - रानी, मैं तुम्हें अवश्य यम कालनिरंजन से छुडाऊँगा। सत्यनाम का सुमरन दूँगा पर मुझको तुम्हारी धन-संपत्ति तथा राजपाट से कोई प्रयोजन नहीं है। जो धन-संपत्ति तुम्हारे पास है, उससे पुण्यकार्य करो। सच्चे साधु-सन्तों का आदर सत्कार करो। सत्यपुरूष के ही सभी जीव हैं, ऐसा जानकर उनसे व्यवहार करो। परन्तु वे मोहवश अज्ञान के अंधकार में पडे हुये हैं। सब शरीरों में सत्यपुरूष के अंश जीवात्मा का ही वास है, पर वह कहीं प्रकट, और कहीं गुप्त है।

हे रानी, ये समस्त जीव सत्यपुरूष के हैं परन्तु वे मोह के भ्रमजाल में फ़ँसे कालनिरंजन के पक्ष में हो रहे हैं। यह सब चरित्र कालनिरंजन का ही है कि सब जीव सत्यपुरूष को भुलाकर उसके फ़ैलाये खानी-वाणी के जाल में फ़ँसे हैं। और उसने यह जाल इतनी सूझबूझ से फ़ैलाया है कि मुझ जैसे उद्धारक से भी जीव कालवश होकर उसका पक्ष लेकर लडते हैं, और मुझे भी नहीं पहचानते। इस प्रकार ये भ्रमित जीव सत्यपुरूषरूपी अमृत को छोडकर विषरूपी कालनिरंजन से प्रेम करते हैं। असंख्य जीवों में से कोई-कोई ही इस कपटी कालनिरंजन की चालाकी को समझ पाता है, और सत्यनाम का उपदेश लेता है।

इन्द्रमती बोली - हे प्रभु, अब मैंने सब कुछ समझ लिया है। अब आप वही करो जिससे मेरा उद्धार हो।

कबीर साहब बोले - धर्मदास, तब मैंने रानी को सत्यनाम उपदेश यानी दीक्षा दी।

रानी ने ऐसी (दीक्षा के समय होने वाली) अनुभूति से प्रभावित होकर अपने पति से कहा - स्वामी, यदि आप सुखदायी मोक्ष चाहते हो तो करूणामय स्वामी की शरण में आओ। मेरी इतनी बात मानो।

राजा बोला - रानी, तुम मेरी अर्धांगिनी हो, इसलिये मैं तुम्हारी भक्ति में आधे का भागीदार हूँ। इसलिये हम-तुम दोनों भक्त नहीं होंगे, मैं सिर्फ़ तुम्हारी भक्ति का प्रभाव देखूँगा कि किस प्रकार तुम मुझे मुक्त कराओगी। मैं तुम्हारी भक्ति का प्रताप देखूँगा। जिससे सब दुख कष्ट मिट जायेंगे, और हम सत्यलोक जायेंगे।

रानी इन्द्रमती का सत्यलोक जाना

कबीर साहब बोले - धर्मदास, यह सब रानी ने मेरे पास आकर कहा, और मैंने उसे विघ्न डालकर बुद्धि फ़ेरने वाले कालनिरंजन का चरित्र सुनाया। उसने राजा की बुद्धि किस तरह फ़ेर दी, और इसके बाद मैंने रानी को भविष्य के बारे में बताया।

मैंने रानी से कहा - रानी सुनो, कालनिरंजन अपनी कला से छलरूप धारण करेगा। साँप बनकर कालदूत तुम्हारे पास आयेगा, और तुम्हें डसेगा, ऐसा मैं तुम्हें पहले ही बताये देता हूँ। इसलिये मैं तुमको बिरहुली मन्त्र बताता हूँ, जिससे कालरूपी सर्प का सब जहर दूर हो जायेगा। फ़िर यम तुमसे दूसरा धोखा करेगा। वह हंसवर्ण का सफ़ेदरूप बनाकर तुम्हारे पास आयेगा, और मेरे समान ज्ञान तुम्हें समझायेगा।

वह तुमसे कहेगा - रानी, मुझे पहचान मैं कालनिरंजन का मानमर्दन करने वाला हूँ, और मेरा नाम ज्ञानी करूणामय है, इस प्रकार काल तुम्हें ठगेगा। मैं उसका हुलिया भी तुम्हें बताता हूँ। कालदूत का मस्तक छोटा होगा, और उसकी आँखों का रंग बदरंग होगा, उसके दूसरे सब अंग श्वेतरंग के होंगे। ये सब काल के लक्षण मैंने तुम्हें बता दिये।

तब रानी ने घबरा कर मेरे चरण पकङ लिये, और बोली - प्रभु, मुझे सत्यलोक ले चलो यह तो यम का देश है। जिससे मेरे सब दुख-कष्ट मिट जायें।

मैंने कहा - रानी, सत्यनाम-दीक्षा से यम से तुम्हारा सम्बन्ध टूट गया है, और तुम सत्यपुरूष की आत्मा हो गयी हो। अब तुम इस सत्यनाम का सुमरन करो, तब ये प्रपंची कालनिरंजन तुम्हारा क्या बिगाङ लेगा? जबतक तुम्हारी आयु पूरी न हो, इसी नाम का सुमरन करो। जबतक आयु का ठेका पूरा न हो, जीव सत्यलोक नहीं जा सकता। इस कालनिरंजन की कला बहुत भयंकर है। वह संसार में जीवों के पास हाथीरूप में आता है, परन्तु सिंहरूपी सत्यनाम का सुमरन करते ही सुमरने वाले का भय कालनिरंजन मानता है, और सामने नहीं आता।

रानी बोली - साहिब, जब कालनिरंजन सर्प बनकर मुझे सताये, और हंसरूप धारण कर भरमाये तब फ़िर आप मेरे पास आ जाना, और मेरी हंस-जीवात्मा को सत्यलोक ले जाना, यही मेरी विनती है।

कबीर साहब बोले - रानी, काल सर्प और मानवरूप की कला धरकर तुम्हारे पास आयेगा, तब मैं उसका मानमर्दन करूँगा। मुझे देखते ही काल भाग जायेगा। उसके पीछे मैं तुम्हारे पास आऊँगा, और तुम्हारे जीव को सत्यलोक ले जाऊँगा।

धर्मदास, इतना कहकर मैंने स्वयं को छुपा लिया, और तब तक्षकसर्प बनकर कालदूत आया। जब आधी रात हो गयी थी तब रानी अपने महल में आकर पलंग पर लेट गयी, और सो गयी। उसी समय तक्षक ने आकर रानी के माथे में डस लिया।

रानी ने जल्दी ही राजा से कहा - तक्षक ने मुझे डस लिया है।

इतना सुनते ही राजा व्याकुल हो गया, और विष उतारने वाले गारूडी (ओझा) को बुलाया। रानी इन्द्रमती ने साहिब में सुरति लगाकर उनका दिया बिरहुली मन्त्र जपा, और गारूडी से कहा - तुम दूर जाओ, तुम्हारी आवश्यकता नहीं है।

रानी ने राजा से कहा - सदगुरू ने मुझे बिरहुली मन्त्र दिया है, जिससे मुझ पर विष का प्रभाव नहीं होगा।

ऐसा कहते हुये जाप करती हुयी रानी उठ कर खडी हो गयी। राजा चन्द्रविजय अपनी रानी को ठीक देखकर बहुत प्रसन्न हुआ।

धर्मदास, रानी के बिना किसी नुकसान के ठीक हो जाने पर वह कालदूत वहाँ गया जहाँ ब्रह्मा, विष्णु, महेश थे, और बोला - मेरे विष का तेज भी इन्द्रमती को नहीं लगा। सत्यपुरूष के नामप्रताप से सारा विष दूर हो गया।

विष्णु ने कहा - यमदूत सुन, तुम अपने सब अंग सफ़ेद बना लो। मेरी बात मानो, और छल करके रानी को ले आओ।

तब उस कालदूत ने ऐसा ही किया, और रानी के पास मेरे (कबीर) वेश में आकर बोला - रानी, तुम क्यों उदास हो, मैंने तुम्हें दीक्षामन्त्र दिया है। तुम जानबूझ कर ऐसी अनजान क्यों हो रही हो। रानी, मेरा नाम करूणामय है, मैं काल को मारकर उसकी ऐसी पिसाई कर दूँगा। जब काल ने तक्षक बनकर तुम्हें डसा, तब भी मैंने तुम्हें बचाया। तुम पलंग से उतरकर मेरे चरण स्पर्श करो, और अपनी मान बडाई छोडो। मैं तुम्हें प्रभु के दर्शन कराऊँगा।

लेकिन मेरे द्वारा पहले ही बताये जाने से रानी ने उसको पहचान लिया, और उसकी आँख में तीन रेखायें देखीं, पीली, सफ़ेद और लाल। फ़िर उसका छोटा मस्तक देखा।

फिर रानी मेरे वचनों को याद करती हुयी बोली - यमदूत, तुम अपने घर जाओ, मैंने तुम्हें पहचान लिया है। कौवा बहुत सुन्दर वेश बनाये परन्तु वह हंस की सुन्दरता नहीं पा सकता, वैसा ही मैंने तुम्हारा रूप देखा। मेरे समर्थगुरू ने मुझे पहले ही सब बता दिया था।

यह सुनकर यमदूत ने बहुत क्रोध किया, और बोला - मैंने कितना बारबार तुम्हें कहकर समझाया फ़िर भी तुम नहीं मानी। तुम्हारी बुद्धि फ़िर गयी है।

ऐसा कहकर वह रानी के पास आया, और उसने रानी को थप्पड़ मारा। जिससे रानी भूमि पर गिर गयी, और उसने मेरा (कबीर) सुमरिन किया, फिर बोली - हे सदगुरू, मेरी सहायता करो, मुझको ये क्रूरकाल बहुत दुख दे रहा है।

धर्मदास, मेरा स्वभाव है कि भक्त की पुकार सुनते ही मुझसे नहीं रहा जाता इसलिये मैं क्षणभर में इन्द्रमती के पास आ गया। मुझे देखते ही रानी को बहुत प्रसन्नता हुयी। मेरे आते ही काल वहाँ से चला गया। उसके थप्पड़ से जो अशुद्धि हुयी थी, मेरे दर्शन से दूर हो गयी।

तब रानी बोली - साहिब, मुझे यम की छाया की पहचान हो गयी। मेरी एक विनती सुनिये, अब मैं मृत्युलोक में नहीं रहना चाहती। साहिब, मुझे अपने देश सत्यलोक ले चलिये, यहाँ तो बहुत काल-कलेश है।

यह कहकर वह उदास हो गयी।

धर्मदास, उसकी ऐसी विनती सुनकर मैंने उस पर से काल का कठिन प्रभाव समाप्त कर दिया। फ़िर उसकी आयु का ठीका (शेष आयु का समय, समय से पहले पूरा करना) पूरा भर दिया, और रानी के हंसजीव को लेकर सत्यलोक चला गया।

मैंने उसे लेकर मानसरोवर दीप पहुँचाया जहाँ पर मायाकामिनी किलोलक्रीड़ा कर रही थी। अमृतसरोवर से उसे अमृत चखाया तथा कबीरसागर पर उसका पाँव रखवाया। उसके आगे सुरतिसागर था, वहाँ पहुँचते ही रानी की जीवात्मा प्रकाशित हो गयी। तब उसे सत्यलोक के द्वार पर ले गया, जिसे देखकर रानी ने परमसुख अनुभव किया। सत्यलोक के द्वार पर रानी की हंसआत्मा को देखकर, वहाँ के हंसों ने दौड़कर रानी को अपने से लिपटा लिया।

और स्वागत करते हुये कहा - तुम धन्य हो, जो करूणामय स्वामी को पहचान लिया। अब तुम्हारा कालनिरंजन का फ़ंदा छूट गया, और तुम्हारे सब दुख-द्वंद मिट गये। हे इन्द्रमती, मेरे साथ आओ, तुम्हें सत्यपुरूष के दर्शन कराऊँ।

ऐसा कहकर मैंने सत्यपुरूष ने विनती की - हे सत्यपुरूष, अब हंसों के पास आओ, और एक नये हंस को दर्शन दो। हे बन्दीछोड़, आप महान कृपा करने वाले हो। हे दीनदयालु दर्शन दो।

तब पुष्पदीप का पुष्प खिला, और वाणी हुयी - हे योगसंतायन सुनो अब हंसों को ले आओ, और दर्शन करो।

तब ज्ञानी हंसों के पास आये, और उन्हें ले जाकर सत्यपुरूष का दर्शन कराया। सब हंसों ने सत्यपुरूष को दण्डवत प्रणाम किया। तब आदिपुरूष ने चार अमृतफ़ल दिये। जिसे सब हंसों ने मिलकर खाया।

कबीर का सुदर्शन श्वपच को ज्ञान देना

कबीर साहब बोले - धर्मदास, रानी इन्द्रमती के हंसजीव को सत्यलोक पहुँचा कर, उसे सत्यपुरूष के दर्शन कराने के बाद मैंने कहा - हे हंस, अब अपनी बात बताओ तुम्हारी जैसी दशा है, सो कहो। तुम्हारा सब दुख-द्वंद, जन्म-

मरण का आवागमन सब मिट गया, और तुम्हारा तेज सोलह सूर्य के बराबर हो गया, और तुम्हारे सब कलेश मिटकर तुम्हारा कल्याण हुआ।

इन्द्रमती दोनों हाथ जोडकर बोली - साहिब, मेरी एक विनती है, बडे भाग्य से मैंने आपके श्रीचरणों में स्थान पाया है मेरे इस हंसशरीर का रूप बहुत सुन्दर है। परन्तु मेरे मन में एक संशय है, जिससे मुझे (अपने पति चन्द्रविजय) राजा के प्रति मोह हुआ है, क्योंकि वह राजा मेरा पति रहा है। हे करूणामय स्वामी, आप उसे भी सत्यलोक ले आईये, नहीं तो मेरा राजा काल के मुख में जायेगा।

कबीर साहब बोले - तब मैंने कहा, बुद्धिमान हंस सुन, राजा ने नामउपदेश नहीं लिया। उसने सत्यपुरूष की भक्ति नहीं पायी, और भक्तिहीन होकर तत्वज्ञान के बिना वह इस असार संसार में चौरासी लाख योनियों में ही भटकेगा।

इन्द्रमती बोली - प्रभु, मैं जब संसार में रहती थी, और अनेक प्रकार से आपकी भक्ति किया करती थी। तब सज्जन राजा ने मेरी भक्ति को समझा, और कभी भी भक्ति से नहीं रोका। संसार का स्वभाव बहुत कठोर है, यदि अपने पति को छोडकर उसकी स्त्री कहीं अलग रहे, तो सारा संसार उसे गाली देता है, और सुनते ही पति भी उसे मार डालता है। साहिब, राजकाज में तो मान, प्रशंसा, नास्तिकता, क्रोध, चतुराई होती ही है परन्तु इन सबसे अलग मैं साधु-संतों की सेवा ही करती थी, और राजा से भी नहीं डरती थी। तो जब मैं साधु-सन्तों की सेवा करती थी। यह सुनकर राजा प्रसन्न ही होता था।

साहिब, इसके विपरीत राजा ऐसा करने के लिये मुझे रोकता, दुख देता, तो मैं किस तरह साधु-सन्तों की सेवा कर पाती, और तब मेरी मुक्ति कैसे होती अतः सेवा-भक्ति को जानने वाला वह राजा धन्य है। उसके हंस (जीवात्मा) को भी ले आइये। हे हंसपति सदगुरू, आप तो दया के सागर हैं। दया कीजिये, और राजा को सांसारिक बँधनों से छुडाईये।

कबीर साहब बोले - धर्मदास, मैं उस हंस इन्द्रमती की ऐसी बातें सुनकर बहुत हँसा, और इन्द्रमती की इच्छाअनुसार उसके राज्य गिरनारगढ़ में प्रकट हो गया। उस समय राजा चन्द्रविजय की आयु पूरी होने के करीब ही आ गयी थी। राजा चन्द्रविजय के प्राण निकालने के लिये यमराज उन्हें घेर कर बहुत कष्ट दे रहा था, और संकट में पडा हुआ राजा भय से थरथर कांप रहा था। तब मैंने यमराज से उसे छोडने को कहा। यमराज उसे छोडता नहीं था।

धर्मदास, दुर्लभ मनुष्यशरीर में सत्यनाम भक्ति न करने की चूक का यही परिणाम होता है। सत्यपुरूष की भक्ति को भूलकर जो जीव संसार के मायाजाल में पडे रहते हैं। आयु पूरी होने पर यमराज उन्हें भयंकर दुख देता ही है। तब मैंने राजा चन्द्रविजय का हाथ पकड लिया, और उसी समय सत्यलोक ले आया।

रानी इन्द्रमती यह देखकर बहुत प्रसन्न हुयी, और बोली - हे राजा, सुनो, मुझे पहचानो मैं तुम्हारी पत्नी हूँ।

राजा उससे बोला - ज्ञानवान हंस, तुम्हारा दिव्य रूपरंग तो सोलह सूर्य जैसा दमक रहा है। तुम्हारे अंग-अंग में विशेष अलौकिक चमक है, तब तुमको अपनी पत्नी कैसे कहूँ। श्रेष्ठनारी, यह तुमने बहुत अच्छी भक्ति की जिससे अपना और मेरा दोनों का ही उद्धार किया। तुम्हारी भक्ति से ही मैंने अपना निजघर सत्यलोक पाया। मैंने करोडों जन्मों तक धर्मपुण्य किया, तब ऐसी सतकर्म करने वाली भक्ति करने वाली स्त्री पायी। मैं तो राजकाज ही करता हुआ भक्ति से विमुख रहा। रानी, यदि तुम न होती, तो मैं निश्चय ही कठोर नर्क में जाता। ऐसा मैंने मृत्युपूर्व ही

अनुभव किया अतः संसार में तुम्हारे समान पत्नी सबको मिले।

कबीर साहब बोले - धर्मदास, तब मैंने राजा से ऐसा कहा, जो जीव सत्यपुरूष के सतनाम का ध्यान करता है, वह दोबारा कष्टमय संसार में नहीं जाता।

धर्मदास, इसके बाद मैं फ़िर से संसार में आया, और काशी नगरी में गया, जहाँ भक्त सुदर्शन श्वपच रहता था। वह शब्दविवेकी ज्ञान को समझने वाला उत्तम सन्त था। उसने मेरे बताये आत्मज्ञान को शीघ्र ही समझा, और उसे अपनाया। उसका पक्का विश्वास देखकर मैंने उसे भवबंधन से मुक्त कर दिया, और विधिपूर्वक नाम उपदेश किया।

धर्मदास, सत्यपुरूष की ऐसी प्रत्यक्ष महिमा देखते हुये भी जो जीव उसको नहीं समझते वे कालनिरंजन के फ़ंदे में पडे हुये हैं। जैसे कुत्ता अपवित्र वस्तु को भी खा लेता है, वैसे ही संसारी लोग भी अमृत छोड़कर विष खाते हैं अर्थात सत्यपुरूषरूपी अमृत को छोड़कर विषरूपी कालनिरंजन की ही भक्ति करते हैं।

धर्मदास, द्वापर युग में युधिष्ठर नाम का एक राजा हुआ। महाभारत युद्ध में अपने ही बन्धु-बान्धवों को मारकर उनसे बहुत पाप हुआ था अतः युद्ध के बाद बहुत हाहाकार मच गया। चारो ओर घोर अशान्ति और शोक-दुख का माहौल था। खुद युधिष्ठर को बुरे स्वपन और अपशकुन होते थे। तब श्रीकृष्ण की सलाह पर उन्होंने इस पाप निवारण हेतु एक यज्ञ किया। इस यज्ञ की सभी विधिवत तैयारी आदि करके जब यज्ञ होने लगा।

तब श्रीकृष्ण ने कहा - इस यज्ञ के सफ़लतापूर्वक होने की पहचान है कि आकाश में बजता हुआ घंटा स्वतः सुनायी देगा। उस यज्ञ में संयासी, योगी, ऋषि, मुनि, वैरागी, ब्राह्मण, ब्रह्मचारी आदि सभी आये। सभी को प्रेम से भोजन आदि कराया पर घंटा नहीं बजा।

युधिष्ठर बहुत लज्जित हुये और श्रीकृष्ण के पास इसका कारण पूछने गये।

श्रीकृष्ण बोले - जितने भी लोगों ने भोजन किया, इनमें एक भी सच्चा सन्त नहीं था। वे दिखावे के लिये साधु, सन्यासी, योगी, वैरागी, ब्राह्मण, ब्रह्मचारी अवश्य लग रहे हों। पर वे मन से अभिमानी ही थे, इसलिये घंटा नहीं बजा।

युधिष्ठर को बढ़ा आश्चर्य हुआ। इतने विशाल यज्ञ में करोडों साधुओं ने भोजन किया, और उनमें कोई सच्चा ही नहीं था तब हम ऐसा सच्चासन्त कहाँ से लायें।

श्रीकृष्ण ने कहा - काशी नगरी से सुदर्शन श्वपच को लेकर आओ, वे ही सर्वोत्तम साधु हैं, उन जैसा साधु अभी कोई नहीं है। तब यज्ञ सफ़ल होगा।

ऐसा ही किया गया, और घन्टा बजने लगा।
श्वपच सुदर्शन के ग्रास उठाते ही घंटा सात बार बजा। यज्ञ सफ़ल हो गया।

कबीर साहब बोले - धर्मदास, तब भी जो अज्ञानी जीव सदगुरू की वाणी का रहस्य नहीं पहचानते, ऐसे लोगों की बुद्धि नष्ट होकर यम के हाथों बिक गयी है। अपने ही भक्तजीव को ये काल दुख देता है, नर्क में डालता है। काल

के लिये अब क्या कहूँ, ये भक्त-अभक्त सभी को दुख देता है। सबको मार खाता है। गौर से समझो, इस काल के द्वारा ही महाभारत युद्ध में श्रीकृष्ण ने पांडवों को युद्ध के लिये प्रेरित किया, और हत्या का पाप करवाया। फ़िर उन्हीं श्रीकृष्ण ने पांडवों को दोष लगाया कि तुमसे हत्या का पाप हुआ अतः यज्ञ करो। और तब कहा था कि तुम्हें इसके बदले स्वर्ग मिलेगा तुम्हारा यश होगा।

धर्मदास, इसके बाद भी पांडवों को (श्रीकृष्ण ने) और अधिक दुख दिया, और जीवन के अंतिम समय में हिमालय यात्रा में भेजकर बर्फ़ में गलवा दिया। द्रौपदी और चारों पांडव भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव हिमालय की बर्फ़ में गल गये। केवल सत्य को धारण करने वाले युधिष्ठर ही बचे। जब श्रीकृष्ण को अर्जुन बहुत प्रिय था तो उसकी ये गति क्यों हुयी?

राजा बलि, हरिश्चन्द्र, कर्ण बहुत बङे दानी थे। फ़िर भी काल ने उन्हें बहुत प्रकार से दुख दिया, अपमान कराया अतः इस जीव को अज्ञानवश सत्य-असत्य उचित-अनुचित का ज्ञान नहीं है। इसलिये वह सदा हितैषी सत्यपुरूष को छोङकर इस कपटी धूर्त कालनिरंजन की पूजा करते हुये मोहवश उसी की ओर भागता है।

कालनिरंजन जीव को अनेक कला दिखाकर भ्रमित करता है। जीव इससे मुक्ति की आशा लगाकर और उसी आशा की फ़ांस में बँधकर काल के मुख में जाता है। इन दोनों कालनिरंजन और माया ने सत्यपुरूष के समान ही बनावटी नकली और वाणी के अनेक नाम मुक्ति के नाम पर संसार में फ़ैला दिये हैं, और जीव को भयंकर धोखे में डाल दिया है।

काल कसाई, जीव बकरा

कबीर साहब बोले - धर्मदास, द्वापर युग बीत गया और कलियुग आया। तब मैं फ़िर सत्यपुरूष की आज्ञा से जीवों को चेताने हेतु प्रथ्वी पर आया, और मैंने कालनिरंजन को अपनी ओर आते देखा।

मुझे देखकर वह भय से मुरझा ही गया, और बोला - किसलिये मुझे दुखी करते हो, और मेरे भक्ष्य भोजन जीवों को सत्यलोक पहुँचाते हो। तीनों युग त्रेता, द्वापर, सतयुग में आप संसार में गये, और जीवों का कल्याण कर मेरा संसार उजाङा। सत्यपुरूष ने जीवों पर शासन करने का वचन मुझे दिया हुआ है। मेरे अधिकारक्षेत्र से आप जीव को छुङा लेते हो। आपके अलावा यदि कोई दूसरा भाई इस प्रकार आता तो मैं उसे मारकर खा जाता। लेकिन आप पर मेरा कोई वश नहीं चलता। आपके बलप्रताप से ही हंसजीव (मनुष्य) अपने वास्तविक घर अमरलोक को जाते हैं।

अब आप फ़िर संसार में जा रहे हो परन्तु आपके शब्दउपदेश को संसार में कोई नहीं सुनेगा। शुभ और अशुभ कर्मों के भरमजाल का मैंने ऐसा ठाठ मोह सुख रचा है कि जिससे उसमें फ़ँसा जीव आपके बताये सत्यलोक के सदमार्ग को नहीं समझ पायेगा। धर्म के नाम पर मैंने घर-घर में भ्रम का भूत पैदा कर दिया है।
इसलिये सभी जीव असली पूजा भूलकर भगवान, देवी-देवता, भूत-पिशाच, भैरव आदि की पूजा-भक्ति में लगे हैं, और इसी को सत्य समझ कर खुद को धन्य मान रहे हैं। इस प्रकार धोखा देकर मैंने सब जीवों को अपनी कठपुतली बनाया हुआ है। संसार में जीवों को भ्रम और अज्ञान का भूत लगेगा परन्तु जो आपको तथा आपके सदउपदेश को पहचानेगा उसका भरम तत्काल दूर हो जायेगा।

लेकिन मेरे भ्रमभूत से ग्रस्त मनुष्य मांस-मदिरा खायेंगे पियेंगे, और ऐसे नीच मनुष्यों को मांस खाना बहुत प्रिय होगा। मैं अपने ऐसे मतपंथ प्रकट करूँगा, जिसमें सब मनुष्य माँस-मदिरा का सेवन करेंगे। तब मैं चंडी, योगिनी, भूत-प्रेत आदि को मनुष्य से पुजवाऊँगा, और इसी भ्रम से सारे संसार के जीवों को भटकाऊँगा। जीवों को अनेक प्रकार के मोहबंधनों में बाँधकर इस प्रकार के फ़ँदों में फ़ँसा दूँगा कि वे अपने अन्त समय तक मृत्यु को भूलकर पापकर्मों में लिप्त और वास्तविक भक्ति से दूर रहेंगे, और इस प्रकार मोहबंधनों में बँधे वे जीव जन्म, पुनर्जन्म और चौरासी लाख योनियों में बारम्बार भटकते ही रहेंगे। भाई, आपके द्वारा बनी हुयी सत्यपुरूष की भक्ति तो बहुत कठिन है। आप समझाकर कहोगे तब भी कोई नहीं मानेगा।

कबीर साहब बोले - निरंजन, तुमने जीवों के साथ बङा धोखा किया है, मैंने तुम्हारे धोखे को पहचान लिया है। सत्यपुरूष ने जो वचन कहा है, वह दूसरा नहीं हो सकता। उसी की वजह से तुम जीवों को सताते, और मारते हो। सत्यपुरूष ने मुझे आज्ञा दी है, उसके अनुसार सब श्रद्धालु जीव सत्यनाम के प्रेमी होंगे। इसलिये मैं सरल स्वभाव से जीवों को समझाऊँगा, और सत्यज्ञान को ग्रहण करने वाले अंकुरी जीवों को भवसागर से छुङाऊँगा। तुमने मोहमाया के जो करोङों जाल रच रखे हैं, और वेद, शास्त्र, पुराण में जो अपनी महिमा बताकर जीव को भरमाया है। यदि मैं प्रत्यक्षकला धारण करके संसार में आऊँ तो तेरा जाल और ये झूठी महिमा समाप्त कर सब जीवों को संसार से मुक्त करा दूँ।

लेकिन जो मैं ऐसा करता हूँ, तो सत्यपुरूष का वचन भंग होता है। उनका वचन तो सदा न टूटने वाला, न डोलने वाला, और बिना मोह का अनमोल है अतः मैं उसका पालन अवश्य ही करूँगा। जो श्रेष्ठ जीव होंगे, वे मेरे सारशब्द ज्ञान को मानेंगे। तेरी चालाकी समझ में आते ही शीघ्र सावधान होने वाले अंकुरीजीवों को मैं भवसागर से मुक्त कराऊँगा, और तुम्हारे सारे जाल को काटकर उन्हें सत्यलोक ले जाऊँगा। जो तुमने जीवों के लिये करोङों भ्रम फ़ैला रखे हैं, वे तुम्हारे फ़ैलाये हुये भ्रम को नहीं मानेंगे। मैं सब जीवों का सत्यशब्द पक्का करके उनके सारे भ्रम छुङा दूँगा।

निरंजन बोला - जीवों को सुख देने वाले, मुझे एक बात समझा कर कहो कि जो तुमको लगन लगाकर रहेगा, उसके पास मैं काल नहीं जाऊँगा। मेरा कालदूत आपके हंस को नहीं पायेगा, और यदि वह उस हंसजीव (सत्यनाम दीक्षा) के पास जायेगा, तो मेरा वह कालदूत मूर्छित हो जायेगा, और मेरे पास खाली हाथ लौट आयेगा। लेकिन आपके गुप्तज्ञान की यह बात मुझे समझ नहीं आती अतः उसका भेद समझा कर कहो, वह क्या है?

तब मैंने कहा - निरंजन, ध्यान से सुन, सत्य श्रेष्ठ पहचान है, और वह सत्यशब्द (निर्वाणी नाम) मोक्ष प्रदान कराने वाला है। सत्यपुरूष का नाम ‘गुप्त प्रमाण’ है।

कालनिरंजन बोला - अंतर्यामी स्वामी, सुनो और मुझ पर कृपा करो। इस युग में आपका क्या नाम होगा, मुझे बताओ? और अपने नामदान उपदेश को भी बताओ कि किस तरह और कौन सा ‘नाम’ आप जीव को दोगे। वह सब मुझे बताओ। जिस कारण आप संसार में जा रहे हो, उसका सब भेद मुझसे कहो। तब मैं भी जीवों को उस नाम का उपदेश कर चेताऊँगा, और उन जीवों को सत्यपुरूष के सत्यलोक भेजूँगा। प्रभु, आप मुझे अपना दास बना लीजिये तथा ये सारा गुप्तज्ञान मुझे भी समझा दीजिये।

मैंने कहा - निरंजन सुन, मैं जानता हूँ, आगे के समय में तुम कैसा छल करने वाले हो। दिखावे के लिये तो तुम

मेरे दास रहोगे, और गुप्तरूप से कपट करोगे। गुप्त सारशब्द का भेदज्ञान मैं तुम्हें नहीं दूँगा। सत्यपुरूष ने ऐसा आदेश मुझे नहीं दिया है। इस कलियुग में मेरा नाम कबीर होगा, और यह इतना प्रभावी होगा कि 'कबीर' कहने से यम अथवा उसका दूत उस श्रद्धालु जीव के पास नहीं जायेगा।

कालनिरंजन बोला - आप मुझसे द्वेष रखते हो लेकिन एक खेल मैं फ़िर भी खेलूँगा। मैं ऐसी छलपूर्ण बुद्धि बनाऊँगा, जिससे अनेक नकली हंसजीवों को अपने साथ रखूँगा, और आपके समान रूप बनाऊँगा तथा आपका नाम लेकर अपना मत चलाऊँगा। इस प्रकार बहुत से जीवों को धोखे में डाल दूँगा कि वे समझे, वे सत्यनाम का ही मार्ग अपनाये हुये हैं। इससे अल्पज्ञ जीव सत्य-असत्य को नहीं समझ पायेंगे।

कबीर साहब बोले - अरे कालनिरंजन, तू तो सत्यपुरूष का विरोधी है, उनके ही विरुद्ध षड्यंत्र रचता है, अपनी छलपूर्ण बुद्धि मुझे सुनाता है। परन्तु जो जीव सत्यनाम का प्रेमी होगा, वो इस धोखे में नहीं आयेगा। जो सच्चा हंस होगा, वह तुम्हारे द्वारा मेरे ज्ञानग्रन्थों में मिलायी गयी मिलावट और मेरी वाणी का सत्य साफ़-साफ़ पहचानेगा, और समझेगा। जिस जीव को मैं दीक्षा दूँगा, उसे तुम्हारे धोखे की पहचान भी करा दूँगा तब वह तुम्हारे धोखे में नहीं आयेगा।

ये बात सुनकर कालनिरंजन चुप हो गया, और अंतर्ध्यान होकर अपने भवन को चला गया। धर्मदास, इस काल की गति बहुत निकृष्ट और कठिन है। यह धोखे से जीवों के मन-बुद्धि को अपने फ़ंदे में फ़ाँस लेता है।

कबीर साहब ने धर्मदास द्वारा काल के चरित्र के बारे में पूछने पर बताया कि - जैसे कसाई बकरा पालता है। उसके लिये चारे-पानी की व्यवस्था करता है, गर्मी-सर्दी से बचने के लिए भी प्रबन्ध करता है। जिसकी वजह से उन अबोध बकरों को लगता है कि हमारा मालिक बहुत अच्छा और दयालु है हमारा कितना ध्यान रखता है। इसलिये जब कसाई उनके पास आता है तो सीधे-साधे बकरे उसे अपना सही मालिक जानकर अपना प्यार जताने के लिए आगे वाले पैर उठाकर कसाई के शरीर को स्पर्श करते हैं। कुछ उसके हाथ-पैरों को भी चाटते हैं।

कसाई जब उन बकरों को छूकर, कमर पर हाथ लगाकर, दबा-दबाकर देखता है तो बेचारे बकरे समझते हैं मालिक प्यार दिखा रहा है। परन्तु कसाई देख रहा है कि बकरे में कितना मांस हो गया? और जब मांस खरीदने ग्राहक आता है तो उस समय कसाई नहीं देखता कि किसका बाप मरेगा किसकी बेटी मरेगी किसका पुत्र मरेगा या परिवार मर रहा है।

वो तो बस, छुरी रखी, और कर दिया - मैंऽ

उनको सुविधा देने खिलाने पिलाने का उसका यही उद्देश्य था। ठीक इसी प्रकार सर्वप्राणी कालब्रह्म की पूजा-साधना करके काल आहार ही बने हैं।

समुद्र और राम की दुश्मनी का कबीर द्वारा निबटारा

धर्मदास बोले - साहिब, इससे आगे क्या हुआ, वह सब भी मुझे सुनाओ।

कबीर साहब बोले - उस समय राजा इन्द्रदमन उड़ीसा का राजा था। राजा इन्द्रदमन अपने राज्य का कार्य न्यायपूर्ण तरीके से करता था। द्वापर युग के अन्त में श्रीकृष्ण ने प्रभास क्षेत्र में शरीर त्यागा तब उसके बाद राजा इन्द्रदमन को स्वपन हुआ। स्वपन में श्रीकृष्ण ने उससे कहा तुम मेरा मंदिर बनवा दो। हे राजन, तुम मेरा मंदिर बनवाकर मुझे स्थापित करो।

जब राजा ने ऐसा स्वपन देखा तो उसने तुरन्त मंदिर बनवाने का कार्य शुरू दिया।
मंदिर बना। जैसे ही उसका सब कार्य पूरा हुआ तुरन्त समुद्र ने वह मंदिर और वह स्थान ही नष्ट कर डुबो दिया। फ़िर जब दुबारा मंदिर बनवाने लगे तो फ़िर से समुद्र क्रोधित होकर दौड़ा, और क्षण भर में सब डुबोकर जगन्नाथ का मंदिर तोड़ दिया। इस तरह राजा ने मंदिर को छह बार बनबाया परन्तु समुद्र ने हर बार उसे नष्ट कर दिया। राजा इन्द्रदमन मंदिर बनवाने के सब उपाय कर हार गया परन्तु समुद्र ने मंदिर नहीं बनने दिया।

मंदिर बनाने तथा टूटने की यह दशा देखकर मैंने विचार किया। क्योंकि अन्यायी कालनिरंजन ने पहले मुझसे यह मंदिर बनवाने की प्रार्थना की थी, और मैंने उसे वरदान दिया था अतः मेरे मन में बात संभालने का विचार आया, और वचन से बँधा होने के कारण मैं वहाँ गया। मैंने समुद्र के किनारे आसन लगाया परन्तु उस समय किसी जीव ने मुझे वहाँ देखा नहीं।

उसके बाद मैं फ़िर समुद्र के किनारे आया, और वहाँ मैंने अपना चौरा (निवास) बनाया। फ़िर मैंने राजा इन्द्रदमन को स्वपन दिखाया और कहा - अरे राजा, तुम मंदिर बनवाओ, और अब ये शंका मत करो कि समुद्र उसे गिरा देगा। मैं यहाँ इसी काम के लिये आया हूँ।

राजा ने ऐसा ही किया, और मंदिर बनवाने लगा। मंदिर बनने का काम होते देखकर समुद्र फ़िर चलकर आया। उस समय फ़िर सागर में लहरें उठी, और उन लहरों ने चित्त में क्रोध धारण किया। इस प्रकार वह लहराता हुआ समुद्र उमड़ उमड़ कर आता था कि मंदिर बनने न पाये। उसकी बेहद ऊँची लहरें आकाश तक जाती थी। फ़िर समुद्र मेरे चौरे के पास आया, और मेरा दर्शन पाकर भय मानता हुआ वहीं रुक गया, और आगे नहीं बढ़ा।

कबीर साहब बोले - तब समुद्र ब्राह्मण का रूप बनाकर मेरे पास आया, और चरण स्पर्श कर प्रणाम किया।

फ़िर वह बोला - मैं आपका रहस्य समझा नहीं, स्वामी, मेरा जगन्नाथ से पुराना वैर है। श्रीकृष्ण जिनका द्वापर युग में अवतार हुआ था, और त्रेता में जिनका रामरूप में अवतार हुआ था। उनके द्वारा समुद्र पर जबरन पुल बनाने से मेरा उनसे पुराना वैर है इसीलिये मैं यहाँ तक आया हूँ। आप मेरा अपराध क्षमा करें, मैंने आपका रहस्य पाया। आप समर्थपुरूष हैं। प्रभु, आप दीनों पर दया करने वाले हैं आप इस जगन्नाथ (राम) से मेरा बदला दिलवाईये। मैं आपसे हाथ जोड़कर विनती करता हूँ, मैं उसका पालन करूँगा। जब राम ने लंका देश के लिये गमन किया था तब वे सब मुझ पर सेतु बाँधकर पार उतरे। जब कोई बलवान किसी दुर्बल पर ताकत दिखाकर बलपूर्वक कुछ करता है तो समर्थप्रभु उसका बदला अवश्य दिलवाते हैं। हे समर्थस्वामी, आप मुझ पर दया करो, मैं उससे बदला अवश्य लूँगा।

कबीर साहब बोले - समुद्र, जगन्नाथ से तुम्हारे वैर को मैंने समझा। इसके लिये मैंने तुम्हें द्वारिका दिया तुम

जाकर श्रीकृष्ण के द्वारिका नगर को डुबो दो।

यह सुनकर समुद्र ने मेरे चरण स्पर्श किये, और वह प्रसन्न होकर उमङ पङा तथा उसने द्वारिका नगर डुबो दिया। इस प्रकार समुद्र अपना बदला लेकर शान्त हो गया। इस तरह मंदिर का काम पूरा हुआ।

तब जगन्नाथ ने पंडित को स्वपन में बताया कि सत्यकबीर मेरे पास आये हैं, उन्होंने समुद्रतट पर अपना चौरा बनाया है। समुद्र के उमङने से पानी वहाँ तक आया, और सत्यकबीर के दर्शन कर पीछे हट गया। इस प्रकार मेरा मंदिर डूबने से उन्होंने बचाया।

तब वह पंडापुजारी समुद्रतट पर आया, और स्नान कर मंदिर में चला गया परन्तु उस पंडित ने ऐसा पाखंड मन में विचारा कि पहले तो उसे म्लेच्छ का ही दर्शन करना पङा है। क्योंकि मैं पहले कबीरचौरा तक आया परन्तु जगन्नाथप्रभु का दर्शन नहीं पाया। (पंडा म्लेच्छ कबीर साहब को समझ रहा है)

धर्मदास, तब मैंने उस पंडे की बुद्धि दुरुस्त करने के लिये एक लीला की, वह मैं तुमसे छिपाऊँगा नहीं। जब पंडित पूजा के लिये मंदिर में गया तो वहाँ एक चरित्र हुआ। मंदिर में जो मूर्ति लगी थी, उसने कबीर का रूप धारण कर लिया, और पंडित ने जगन्नाथ की मूर्ति को वहाँ नहीं देखा क्योंकि वह बदल कर कबीर रूप हो गयी। पूजा के लिये अक्षतपुष्प लेकर पंडित भूल में पङ गया कि यहाँ ठाकुर जी तो हैं ही नहीं फ़िर भाई किसे पूजूँ। यहाँ तो कबीर ही कबीर है।

तब ऐसा चरित्र देखकर उस पंडा ने सिर झुकाया, और बोला - स्वामी, मैं आपका रहस्य नहीं समझ पाया, आप में मैंने मन नहीं लगाया। मैंने आपको नहीं जाना, उसके लिये आपने यह चरित्र दिखाया। प्रभु, मेरे अपराध को क्षमा कर दो।

कबीर साहब बोले - ब्राह्मण, मैं तुमसे एक बात कहता हूँ, जिसे तू कान लगाकर सुन। मैं तुझे आज्ञा देता हूँ कि तू ठाकुर जगन्नाथ की पूजा कर और दुविधा का भाव छोङ दे। वर्ण, जाति, छूत, अछूत, ऊँच, नीच, अमीर, गरीब का भाव त्याग दे, क्योंकि सभी मनुष्य एक समान हैं। इस जगन्नाथ मंदिर में आकर जो मनुष्य में भेदभाव मानता हुआ भोजन करेगा, वह मनुष्य अंगहीन होगा। भोजन करने में जो छूत-अछूत रखेगा, उसका शीश उल्टा (चमगादङ) होगा।

धर्मदास, इस तरह पंडित को पक्का उपदेश करते हुये मैंने वहाँ से प्रस्थान किया।

धर्मदास के पूर्वजन्म की कहानी

धर्मदास बोला - साहिब, आपके द्वारा जगन्नाथ मंदिर का बनवाना मैंने सुना। इसके बाद आप कहाँ गये, कौन से जीव को मुक्त कराया तथा कलियुग का प्रभाव भी कहिये।

कबीर साहब बोले - धर्मदास, 'राजस्थल देश' के राजा का नाम 'बंकेज' था मैंने उसे नाम उपदेश दिया, और जीवों

के उद्धार के लिये कर्णधार केवट बनाया। राजस्थल देश से मैं शाल्मलि दीप आया, और वहाँ मैंने एक संत 'सहते' को चेताया, और उसे जीवों का उद्धार करने के लिये समस्त गुरू ज्ञानदीक्षा प्रदान की। फ़िर मैं वहाँ से दरभंगा आया, जहाँ राजा 'चतुर्भुज स्वामी' का निवास था। उसको भी पात्र जानकर मैंने जीवों को चेताने हेतु गुरूवाई (जीवों को चेताने और नाम उपदेश देने वाला) बनाया। उसने जरा भी मायामोह नहीं किया तब मैंने उसे सत्यनाम देकर गुरूवाई दी।

धर्मदास, मैंने हंस का निर्मलज्ञान, रहनी, गहनी, सुमरन आदि इन कडिहार गुरूओं को अच्छी तरह बताया। वे सब कुल मर्यादा, काम, मोह आदि विषयों का त्याग कर सारगुणों को जानने वाले हुये।
चतुर्भुज, बंकेज, सहतेज और चौथे धर्मदास तुम, ये चारों जीव के कडिहार हैं अर्थात जीव को सत्यज्ञान बताकर भवसागर से पार लगाने वाले हैं। यह मैंने तुमसे अटल सत्य कहा है। धर्मदास, अब तुम्हारे हाथ से मुझको जम्बूदीप (भारत) के जीव मिलेंगे। जो मेरे उपदेश को ग्रहण करेगा, कालनिरंजन उससे दूर ही रहेगा।

धर्मदास बोले - साहिब, मैं पापकर्म करने वाला, दुष्ट और निर्दयी था, और मेरा जीवात्मा सदा भ्रम से अचेत रहा। तब मेरे किस पुण्य से आपने मुझे अज्ञाननिद्रा से जगाया, और कौन से तप से मैंने आपका दर्शन पाया, वह मुझे बतायें।

कबीर साहब बोले - तुम्हें समझाने और दर्शन देने के पीछे क्या कारण था, वह मुझसे सुनो। तुम अपने पिछले जन्मों की बात सुनो, जिस कारण मैं तुम्हारे पास आया।

संत सुदर्शन जो द्वापर में हुये वह कथा मैंने तुम्हें सुनाई। जब मैं उसके हंसजीव को सत्यलोक ले गया तब उसने मुझसे विनती की, और बोला - सदगुरू, मेरी विनती सुनें, और मेरे माता-पिता को मुक्ति दिलायें। हे बन्दीछोङ, उनका आवागमन मेट कर छुङाने की कृपा करें, यम के देश में उन्होंने बहुत दुख पाया है। मैंने बहुत तरीके से उनको समझाया परन्तु तब उन्होंने मेरी बात नहीं मानी, और विश्वास ही नहीं किया।
लेकिन उन्होंने भक्ति करने से मुझे कभी नहीं रोका। जब मैं आपकी भक्ति करता तो कभी उनके मन में वैरभाव नहीं होता बल्कि प्रसन्नता ही होती। इसी से प्रभु, मेरी विनती है कि आप बन्दीछोङ उनके जीव को मुक्त करायें।

जब सुदर्शन श्वपच ने बारबार ऐसी विनती की तो मैंने उसको मान लिया, और संसार में कबीर नाम से आया। मैं निरंजन के एक वचन से बँधा था फ़िर भी सुदर्शन श्वपच की विनती पर मैं भारत आया।

मैं वहाँ गया, जहाँ संत श्वपच के माता पिता 'लक्ष्मी' और 'नरहर' नाम से रहते थे। भाई उन्होंने श्वपच के साथ वाली देह छोङ दी थी, और सुदर्शन के पुण्य से उसके माता-पिता चौरासी में न जाकर पुनः मनुष्यदेह में ब्राह्मण होकर उत्पन्न हुये थे। जब दोनों का जन्म हो गया तब फ़िर विधाता ने समय अनुसार उन्हें पति-पत्नी के रूप में मिला दिया। तब उस ब्राह्मण का नाम कुलपति और उसकी पत्नी का नाम महेश्वरी था। बहुत समय बीत जाने पर भी महेश्वरी के संतान नहीं हुयी थी तब पुत्रप्राप्ति हेतु उसने स्नान कर सूर्यदेव का व्रत रखा। वह आंचल फ़ैलाकर दोनों हाथ जोङकर सूर्य से प्रार्थना करती, उसका मन बहुत रोता था। तब उसी समय मैं (कबीर साहब) उसके आंचल में बालक रूप धरकर प्रकट हो गया।

मुझे देखकर महेश्वरी बहुत प्रसन्न हुयी, और मुझे घर ले गयी, और अपने पति से बोली - प्रभु ने मुझ पर कृपा की, और मेरे सूर्यव्रत करने का फ़ल यह बालक मुझको दिया।

मैं बहुत दिनों तक वहाँ रहा। वे दोनों स्त्री-पुरूष मिलकर मेरी बहुत सेवा करते, पर वे निर्धन होने से बहुत दुखी थे। तब मैंने ऐसा विचार किया कि पहले मैं इनकी गरीबी दूर करूँ। फ़िर इनको भक्ति-मुक्ति का उपदेश करूँ, इसके लिये मैंने एक लीला की। जब ब्राहमण स्त्री ने मेरा पालना हिलाया, तो उसे उसमें एक तौला सोना मिला। फ़िर मेरे बिछौने से उन्हें रोज एक तौला सोना मिलता था, उससे वे बहुत सुखी हो गये। तब मैंने उनको सत्यशब्द का उपदेश किया, और उन दोनों को बहुत तरह से समझाया। परन्तु उनके ह्रदय में मेरा उपदेश नहीं समाया। बालक जानकर उन्हें मेरी बात पर विश्वास नहीं आया। उस देह में उन्होंने मुझे नहीं पहचाना, तब मैं वह शरीर त्याग कर गुप्त हो गया।

तब कुछ समय बाद उस ब्राहमण कुलपति और उसकी स्त्री महेश्वरी दोनों ने शरीर छोङा, और मेरे दर्शन के प्रभाव से उन्हें फ़िर से मनुष्य शरीर मिला। फ़िर दोनों समय अनुसार पति-पत्नी हुये, और वह चंदनवारे नगर में जाकर रहने लगे। इस जन्म में उस औरत का नाम 'ऊदा' और पुरूष का नाम 'चंदन' था। तब मैं सत्यलोक से आकर पुनः चंदवारे नगर में प्रगट हुआ। उस स्थान पर मैंने बालक रूप बनाया, और वहाँ तालाब में विश्राम किया। तालाब में मैंने कमलपत्र पर आसन लगाया, और आठ पहर वहाँ रहा।

उस तालाब में ऊदा स्नान करने आयी, और सुन्दर बालक देखकर मोहित हो गयी। वह मुझे अपने घर ले गयी। उसने अपने पति चंदनसाहू को बताया कि ये बालक किस प्रकार मुझे मिला।

चंदन साहू बोला - अरे ऊदा, तू मूर्ख स्त्री है। शीघ्र जाओ और इस बालक को वहीं डाल आओ। वरना हमारी जाति कुटुम्ब के लोग हम पर हंसेगे, और उनके हंसने से हमें दुख ही होगा।

चंदनसाहू क्रोधित हुआ तो ऊदा बहुत डर गयी।
चंदन साहू अपनी दासी से बोला - इस बालक को ले जा, और तालाब के जल में डाल दे।

कबीर साहब बोले - दासी उस बालक को लेकर चल दी, और तालाब में डालने का मन बनाया उसी समय मैं अंतर्ध्यान हो गया। यह देखकर वह बिलख-बिलख कर रोने लगी। वह मन से बहुत परेशान थी, और ये चमत्कार देखकर मुग्ध होती हुयी बालक को खोजती थी पर मुँह से कुछ न बोलती थी।

इस प्रकार आयु पूरी होने पर चंदनसाहू और ऊदा ने भी शरीर छोङ दिया, और फ़िर दोनों ने मनुष्यजन्म पाया। अबकी बार उन दोनों को जुलाहा-कुल में मनुष्यशरीर मिला। फ़िर से विधाता का संयोग हुआ, और फ़िर से समय आने पर वे पति-पत्नी बन गये। इस जन्म में उन दोनों का नाम नीरू, नीमा हुआ।

नीरू नाम का वह जुलाहा काशी में रहता था। तब एक दिन जेठ महीना और शुक्लपक्ष तथा बरसाइत पूर्णिमा की तिथि थी। नीरू अपनी पत्नी नीमा के साथ लहरतारा तालाब मार्ग से जा रहा था। गर्मी से व्याकुल उसकी पत्नी को जल पीने की इच्छा हुयी, तभी मैं उस तालाब के कमलपत्र पर शिशुरूप में प्रकट हो गया, और बालक्रीङा करने लगा। जल पीने आयी नीमा मुझे देखकर हैरान रह गयी उसने दौङकर मुझे उठा लिया, और अपने पति के पास ले आयी।

नीमा ने मुझे देखकर बहुत क्रोध किया, और कहा - इस बालक को वहीं डाल दो।

नीमा सोच में पड़ गयी।

तब मैंने उससे कहा - नीमा सुनो मैं तुम्हें समझाकर कहता हूँ। पिछले (जन्म के) प्रेम के कारण मैंने तुम्हें दर्शन दिया क्योंकि पिछले जन्म में तुम दोनों सुदर्शन के माता-पिता थे, और मैंने उसे वचन दिया था कि तुम्हारे माता-पिता का अवश्य उद्धार करूँगा। इसलिये मैं तुम्हारे पास आया हूँ, अब तुम मुझे घर ले चलो, और मुझे पहचान कर अपना गुरू बनाओ। तब मैं तुम्हें सत्यनाम उपदेश दूँगा जिससे तुम कालनिरंजन के फ़ँदे से छूट जाओगे।

तब नीमा ने नीरू की बात का भय नहीं माना, और मुझे अपने घर ले गयी। इस प्रकार मैं काशी नगर में आ गया, और बहुत दिनों तक उनके साथ रहा। पर उन्हें मुझ पर विश्वास नहीं आया। वे मुझे अपना बालक ही समझते रहे, और मेरे शब्दउपदेश पर ध्यान नहीं दिया। धर्मदास, बिना विश्वास और समर्पण के जीवनमुक्ति का कार्य नहीं होता। ऐसा निर्णय करके गुरू के वचनों पर दृढ़तापूर्वक विश्वास करना चाहिये। अतः उस शरीर में नीरू नीमा ने मुझे नहीं पहचाना, और मुझे अपना बालक जानकर सतसंग नहीं किया।

धर्मदास, जब जुलाहाकुल में भी नीरू, नीमा की आयु पूरी हुयी, और उन्होंने फ़िर से शरीर त्याग कर दुबारा मनुष्यरूप में मथुरा में जन्म लिया तब मैंने वहाँ मथुरा में जाकर उनको दर्शन दिया। अबकी बार उन्होंने मेरा शब्दउपदेश मान लिया, और उस औरत का रत्ना नाम हुआ। वह मन लगाकर भक्ति करती थी। मैंने उन दोनों स्त्री-पुरूषों को शब्दनाम उपदेश दिया। इस तरह वे मुक्त हो गये, और सत्यलोक में जाकर हंसशरीर प्राप्त किया। उन हंसों को देखकर सत्यपुरूष बहुत प्रसन्न हुये, और उन्हें 'सुकृत' नाम दिया।

फ़िर सत्यलोक में रहते हुये मुझे बहुत दिन बीत गये तब कालनिरंजन ने बहुत जीवों को सताया।

जब कालनिरंजन जीवों को बहुत दुख देने लगा। तब सत्यपुरूष ने सुकृत को पुकारा और कहा - हे सुकृत, तुम संसार में जाओ, वहाँ अपार बलवान कालनिरंजन जीवों को बहुत दुख दे रहा है। तुम जीवों को सत्यनाम संदेश सुनाओ, और हंसदीक्षा देकर काल के जाल से मुक्त कराओ।

ये सुनकर सुकृत बहुत प्रसन्न हुये, और वे सत्यलोक से भवसागर में आ गये।

इस बार सुकृत को संसार में आया देखकर कालनिरंजन बहुत प्रसन्न हुआ कि इसको तो मैं अपने फ़ँदे में फ़ँसा ही लूँगा। तब कालनिरंजन ने बहुत से उपाय अपनाकर सुकृत को फ़ँसाकर अपने जाल में डाल लिया।

जब बहुत दिन बीत गये, और काल ने एक भी जीव को सुरक्षित नहीं छोड़ा, और सबको सताता मारता खाता रहा। तब जीवों ने फ़िर दुखी होकर सत्यपुरूष को पुकारा, और तब सत्यपुरूष ने मुझे पुकारा।

सत्यपुरूष ने कहा - ज्ञानी, शीघ्र ही संसार में जाओ मैंने जीवों के उद्धार के लिये सुकृत अंश भेजा था, वह संसार में प्रकट हो गया। हमने उसे सारशब्द का रहस्य समझा कर भेजा था परन्तु वह वापस सत्यलोक लौटकर नहीं आया, और कालनिरंजन के जाल में फ़ँसकर सुधि-बुधि (स्मृति, अपनी पहचान) भूल गया।
ज्ञानीजी, तुम जाकर उसे अचेत-निद्रा से जगाओ, जिससे मुक्तिपंथ चले। वंश बयालीस हमारा अंश है, जो सुकृत के घर अवतार लेगा। ज्ञानी, तुम शीघ्र सुकृत के पास जाओ, और उसकी कालफ़ाँस मिटा दो।

कबीर साहब बोले - धर्मदास, तब सत्यपुरूष की आज्ञा से मैं तुम्हारे पास आया हूँ। धर्मदास, तुम सोचो विचारो कि तुम जैसे 'नीरू' से होकर जन्मे हो, और तुम्हारी स्त्री आमिन 'नीमा' से होकर जन्मी है। वैसे ही मैं तुम्हारे घर आया हूँ। तुम तो मेरे सबसे अधिक प्रिय अंश हो, इसलिये मैंने तुम्हें दर्शन दिया। अबकी बार तुम मुझे पहचानो तब मैं तुम्हें सत्यपुरूष का उपदेश कहूँगा।

यह वचन सुनते ही धर्मदास दौड़कर कबीर साहब के चरणों में गिर गये, और रोने लगे।

कालदूत नारायण दास की कहानी

कबीर साहब बोले - धर्मदास, मैंने तुम्हारे सामने सत्य का भेद प्रकाशित किया है, और तुम्हारे सभी काल-जाल को मिटा दिया है। अब रहनी-गहनी की बात सुनो, जिसको जाने बिना मनुष्य यूँ ही भूलकर सदा भटकता रहता है। सदा मन लगाकर भक्तिसाधना करो, और मान-प्रशंसा को त्यागकर सच्चेसन्तों की सेवा करो। पहले जाति, वर्ण और कुल की मर्यादा नष्ट करो। (अभिमान मत करो और ये मत मानो कि 'मैं' ये हूँ या वो हूँ। ये चौरासी में फ़ँसने का सबसे बड़ा कारण होता है) तथा दूसरे अन्यमत पत्थर (मूर्ति) पानी (गंगा, यमुना, कुम्भ आदि) देवी-देवता की पूजा छोड़कर निष्काम गुरू की भक्ति करो। जो जीव गुरू से कपट, चतुराई करता है, वह जीव संसार में भटकता, भरमता है। इसलिये गुरू से कभी कपट परदा नहीं रखना चाहिये।

गुरू से कपट मित्र की चोरी, के होय अँधा के होय कोढ़ी।
जो गुरू से भेद कपट रखता है, उसका उद्धार नहीं होता। वह चौरासी में ही रहता है।

धर्मदास, केवल एक सत्यपुरूष के सत्यनाम की आशा और विश्वास करो इस संसार का बहुत बड़ा जंजाल है। इसी में छिपा हुआ कालनिरंजन अपनी फ़ांस (फ़ंदा) लगाये हुये है, जिससे कि जीव उसमें फ़ँसते रहें। परिवार के सब नर-नारी मिलकर यदि सत्यनाम का सुमरन करें तो भयंकर काल कुछ नहीं बिगाड़ सकता। धर्मदास, तुम्हारे घर जितने जीव हैं, उन सबको बुलाओ। सब (हंस) नामदीक्षा लें। फ़िर तुम अन्यायी और क्रूर कालनिरंजन से सदा सुरक्षित रहोगे।

धर्मदास बोले - प्रभु, आप जीवों के मूल (आधार) हो, आपने मेरा समस्त अज्ञान मिटा दिया। मेरा एक पुत्र नारायण दास है, आप उसे भी उपदेश करें।

यह सुनकर कबीर साहब मुस्करा दिये पर अपने अन्दर के भावों को प्रकट नहीं किया, और बोले - धर्मदास, जिसको तुम शुद्ध अंतःकरण वाला समझते हो, उनको तुरन्त बुलाओ।

धर्मदास ने सबको बुलाया, और बोले - भाई, ये समर्थ सदगुरूदेव स्वामी हैं इनके श्रीचरणों में गिरकर समर्पित हो जाओ जिससे कि चौरासी से मुक्त होओ, और संसार में फ़िर से न जन्मों।

इतना सुनते ही सभी जीव आये, और कबीर साहब के चरणों में दंडवत प्रणाम कर समर्पित हो गये परन्तु नारायण

दास नहीं आया। धर्मदास सोचने लगे कि नारायण दास तो बहुत चतुर है फ़िर वह क्यों नहीं आया?

धर्मदास ने अपने सेवक से कहा - मेरे पुत्र नारायण दास ने गुरू 'रूपदास' पर विश्वास किया है, और उसकी शिक्षा अनुसार वह जिस स्थान पर श्रीमदभगवद गीता पढ़ता रहता है। वहाँ जाकर उससे कहो, तुम्हारे पिता ने समर्थगुरू पाया है।

सेवक नारायण दास के पास जाकर बोला - नारायण दास, तुम शीघ्र चलो। आपके पिता के पास समर्थगुरू कबीर साहब आये हैं, उनसे उपदेश लो।

नारायण दास बोला - मैं पिता के पास नहीं जाऊँगा। वे बूढ़े हो गये हैं, और उनकी बुद्धि का नाश हो गया है। विष्णु के समान और कौन है, हम जिसको जपें। मेरे पिता बूढ़े हो गये हैं, और उनको जुलाहा गुरू भा गया है। मेरे मन को तो विठ्ठलेश्वर गुरू ही पाया है। अब और क्या कहूँ, मेरे पिता तो बस पागल ही हो गये हैं।

उस संदेशी ने यह सब बात धर्मदास को आकर बतायी।

धर्मदास स्वयं अपने पुत्र नारायण दास के पास पहुँचे, और बोले - पुत्र नारायण दास, अपने घर चलो। वहाँ सदगुरू कबीर साहब आये हुये हैं उनके श्रीचरणों में माथा टेको, और अपने सब कर्मबँधनो को कटाओ। जल्दी करो, ऐसा अवसर फ़िर नहीं मिलेगा। हठ छोङो, बन्दीछोङ गुरू बारबार नहीं मिलते।

नारायण दास बोला - पिताजी, लगता है आप पगला गये हो । इसलिये तीसरेपन की अवस्था में जिंदागुरू पाया है। अरे, जिसका नाम राम है, उसके समान और कोई देवता नहीं है जिसकी ऋषि-मुनि आदि सभी पूजा करते हैं। आपने गुरू विठ्ठलेश्वर का प्रेम छोङकर अब बुढ़ापे में वह जिन्दागुरू किया है।

तब धर्मदास ने नारायण को बाँह पकङ कर उठा लिया, और कबीर साहब के सामने ले आये, और बोले - इनके चरण पकङो। ये यम के फ़ँदे से छुङाने वाले हैं।

नारायण दास मुँह फ़ेरकर कटु शब्दों में बोला - यह कहाँ हमारे घर में मलेच्छ ने प्रवेश किया है। कहाँ से यह 'जिन्दाठग' आया, जिसने मेरे पिता को पागल कर दिया। वेदशास्त्र को इसने उठाकर रख दिया, और अपनी महिमा बनाकर कहता है। यदि यह जिन्दा आपके पास रहेगा तो मैंने आपके घर आने की आशा छोङ दी है।

नारायण दास की यह बात सुनते ही धर्मदास परेशान हो गये, और बोले - मेरा यह पुत्र जाने क्या मत ठाने हुये है।

फ़िर माता आमिन ने भी नारायण को बहुत समझाया परन्तु नारायण दास के मन में उनकी एक भी बात सही न लगी, और वह बाहर चला गया।

तब धर्मदास कबीर से विनती करते हुये बोले - साहिब, मुझे वह कारण बताओ जिससे मेरा पुत्र इस प्रकार आपको कटुवचन कहता है, और दुर्बुद्धि को प्राप्त होकर भटका हुआ है।

कबीर बोले - धर्मदास, मैंने तो तुम्हें नारायण दास के बारे में पहले ही बता दिया था पर तुम उसे भूल गये हो

अतः फ़िर से सुनो। जब मैं सत्यपुरूष की आज्ञा से जीवों को चेताने मृत्युलोक की तरफ़ आया तब कालनिरंजन ने मुझे देखकर विकराल रूप बनाया, और बोला - सत्यपुरूष की सेवा के बदले मैंने यह 'झांझरीदीप' प्राप्त किया है। ज्ञानी, तुम भवसागर में कैसे (क्यों) आये ? मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, मैं तुम्हें मार दूँगा, तुम मेरा यह रहस्य नहीं जानते।

कबीर ने कहा - अन्यायीनिरंजन सुन, मैं तुझसे नहीं डरता, जो तुम अहंकार की वाणी बोलते हो। मैं इसी क्षण तुम्हें मार डालूँगा।

कालनिरंजन सहम गया, और विनती करता हुआ बोला - ज्ञानीजी, आप संसार में जाओगे, बहुत से जीवों का उद्धार कर मुक्त करोगे, तो मेरी भूख कैसे मिटेगी। जब जीव नहीं होंगे, तब मैं क्या खाऊँगा। मैंने एक लाख जीव रात-दिन खाये, और सवालाख उत्पन्न किये। मेरी सेवा से सत्यपुरूष ने मुझको तीनलोक का राज्य दिया। आप संसार में जाकर जीवों को चेताओगे। उसके लिये मैंने ऐसा इंतजाम किया है।

मैं धर्म-कर्म का ऐसा मायाजाल फ़ैलाऊँगा कि आपका सत्यउपदेश कोई नहीं मानेगा। मैं घर-घर में अज्ञान भ्रम का भूत उत्पन्न करूँगा, तथा धोखा दे देकर जीवों को भ्रम में डालूँगा तब सभी मनुष्य शराब पीयेंगे, माँस खायेंगे। इसलिये कोई आपकी बात नहीं मानेगा, आपका संसार में जाना बेकार है।

मैंने कहा - कालनिरंजन मैं तेरा छल-बल सब जानता हूँ। मैं सत्यनाम से तेरे द्वारा फ़ैलाये गये सब भ्रम मिटा दूँगा, और तेरा धोखा सबको बताऊँगा।

कालनिरंजन घबरा गया, और बोला - मैं जीवों को अधिक से अधिक भरमाने के लिये बारह पंथ चलाऊँगा, और आपका नाम लेकर अपना धोखे का पंथ चलाऊँगा। 'मृतुअँधा' मेरा अंश है, वह धर्मदास के घर जन्म लेगा। पहले मेरा कालदूत धर्मदास के घर जन्म लेगा, पीछे से आपका अंश जन्म लेगा। भाई, मेरी इतनी विनती तो मान ही लो।

धर्मदास, तब मैंने निरंजन को कहा, सुनो निरंजन, तुमने इस प्रकार कहकर जीवों के उद्धारकार्य में विघ्न डाल दिया है। फ़िर भी मैंने तुमको वचन दिया इसलिये धर्मदास, अब वह 'मृतुअँधा' नाम का कालदूत तुम्हारा पुत्र बनकर आया है, और अपना नाम नारायण दास रखवाया है।

नारायण कालनिरंजन का अंश है, जो जीवों के उद्धार में विघ्न का कार्य करेगा। यह मेरा नाम लेकर पंथ को प्रकट करेगा, और जीव को धोखे में डालेगा, और नर्क में डलवायेगा। जैसे शिकारी नाद को बजाकर हिरन को अपने वश में कर लेता है, और पकङकर उसे मार डालता है। वैसे ही शिकारी की भांति यमकाल अपना जाल लगाता है, और इस चाल को हंसजीव ही समझ पायेगा।

तब कालदूत नारायण दास की चाल समझ में आते ही धर्मदास ने उसे त्याग दिया, और कबीर के चरणों में गिर पङे।

कालनिरंजन का छलावा, बारह पंथ

धर्मदास बोले - कालनिरंजन ने जीव को भरमाने के लिये जो अपने बारह पंथ चलाये, वे मुझे समझा कर कहो।

कबीर साहिब बोले - मैं तुमसे काल के 'बारह पंथ' के बारे कहता हूँ। 'मृत्युअंधा' नाम का दूत जो छल बल में शक्तिशाली है वह स्वयं तुम्हारे घर में उत्पन्न हुआ है। यह पहला पंथ है। दूसरा 'तिमिर दूत' चलकर आयेगा उसकी जाति अहीर होगी, और वह नफ़र यानी गुलाम कहलायेगा। वह तुम्हारी बहुत सी पुस्तकों से ज्ञान चुराकर अलग पंथ चलायेगा। तीसरा पंथ का नाम 'अंधाअचेत' दूत होगा वह सेवक होगा। वह तुम्हारे पास आयेगा और अपना नाम 'सुरतिगोपाल' बतायेगा। वह भी अपना अलग पंथ चलायेगा, और जीव को 'अक्षरयोग' (कालनिरंजन) के भ्रम में डालेगा।

धर्मदास, चौथा 'मनभंग' नाम का कालदूत होगा। वह कबीरपंथ की मूलकथा का आधार लेकर अपना पंथ चलायेगा, और उसे मूलपंथ कहकर संसार में फ़ैलायेगा। वह जीवों को 'लूदी' नाम लेकर समझायेगा। उपदेश करेगा, और इसी नाम को 'पारस' कहेगा। वह शरीर के भीतर झंकृत होने वाले शून्य के 'झंग' शब्द का सुमरन अपने मुख से वर्णन करेगा। सब जीव उसे 'थाका' कहकर मानेंगे।

धर्मदास 'पाँचवे पंथ' को चलाने वाला 'ज्ञानभंगी' नाम का दूत होगा उसका पंथ टकसार नाम से होगा। वह इंगला-पिंगला, नाड़ियों के स्वर को साधकर भविष्य की बात करेगा। जीव को जीभ, नेत्र, मस्तक की रेखा के बारे में बता कर समझायेगा। जीवों के तिल, मस्सा आदि चिह्न देखकर उन्हें भ्रमरूपी धोखे में डालेगा। वह जिस जीव के ऊपर जैसा दोष लगायेगा वैसा ही उसको पान खिलायेगा (नाम आदि देना)

'छठा पंथ' कमाल नाम का है वह 'मनमकरंद' दूत के नाम से संसार में आया है। उसने मुर्दे में वास किया, और मेरा पुत्र होकर प्रकट हुआ। वह जीवों को झिलमिल-ज्योति का उपदेश करेगा (जो अष्टांगी ने विष्णु को दिखाकर भरमा दिया) और इस तरह वह जीवों को भरमायेगा। जहाँ तक जीव की दृष्टि है, वह झिलमिल-ज्योति ही देखेगा। जिसने दोनों आँखों से झिलमिल-ज्योति नहीं देखी है, वह कैसे झिलमिल-ज्योति के रूप को पहचानेगा? झिलमिल-ज्योति कालनिरंजन की है। उस दूत के हृदय में सत्य मत समझो, वह तुम्हें भरमाने के लिये है।

सातवां दूत 'चितभंग' है वह मन की तरह अनेक रंगरूप बदल कर बोलेगा। वह 'दीन' नाम कहकर पंथ चलायेगा, और देह के भीतर बोलने वाले आत्मा को ही सत्यपुरूष बतायेगा। वह जगतसृष्टि में पाँच-तत्व, तीन गुण बतायेगा, और ऐसा ज्ञान करता हुआ अपना पंथ चलायेगा। इसके अतिरिक्त आदिपुरूष, कालनिरंजन, अष्टांगी, ब्रह्मा आदि कुछ भी नहीं हैं। ऐसा भ्रम बनायेगा। सृष्टि हमेशा से है, तथा इसका कर्ताधर्ता कोई नहीं है इसी को वह ठोस 'बीजक' ज्ञान कहेगा। वह कहेगा कि अपना आपा ही ब्रह्म है। वही वचन वाणी बोलता है तो फ़िर सोचो गुरू का क्या महत्व और आवश्यकता है?

राम ने वशिष्ठ को, और कृष्ण ने दुर्वासा को गुरू क्यों बनाया। जब कृष्ण जैसों ने गुरूओं की सेवा की तो ऋषियों-मुनियों की फ़िर गिनती ही क्या है? नारद ने गुरू को दोष लगाया तो विष्णु ने उनसे नर्क भुगतवाया।

जो बीजक ज्ञान वह दूत थोपेगा। वह ऐसा होगा जैसे गूलर के भीतर कीड़ा घूमता है तथा वह कीड़ा समझता है कि

संसार इतना ही है। अपने आपको कर्ता-धर्ता मानने से जीव का कभी भला न होगा। अपने आपको ही मानने वाला जीव रोता रहेगा।

आठवां पंथ चलाने वाला 'अकिलभंग' दूत होगा वह परमधाम कहकर अपना पंथ चलायेगा। कुछ कुरआन तथा वेद की बातें चुराकर अपने पंथ में शामिल करेगा। वह कुछ-कुछ मेरे निर्गुण-मत की बातें लेगा, और उन सब बातों को मिलाकर एक पुस्तक बनायेगा। इस प्रकार जोड़जाड़ कर वह ब्रह्मज्ञान का पंथ चलायेगा। उसमें कर्मआश्रित (यानी ज्ञानरहित ज्ञानआश्रित नहीं, कर्म ही पूजा है, मानने वाले) जीव बहुत लिपटेंगे।

नौवां पंथ 'विशंभर दूत' का होगा, और उसका जीवनचरित्र ऐसा होगा कि वह 'रामकबीर' नाम का पंथ चलायेगा। वह निर्गुण-सगुण दोनों को मिलाकर उपदेश करेगा। पाप-पुण्य को एक समझेगा। ऐसा कहता हुआ वह अपना पंथ चलायेगा।
दसवां पंथ के दूत का नाम 'नकटा नैन' है वह 'सतनामी' कहकर पंथ चलायेगा, और 'चारवर्ण' के जीवों को एक में मिलायेगा। वह अपने वचनउपदेश में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सबको एक समान मिलायेगा परन्तु वह सदगुरू के शब्दउपदेश को नहीं पहचानेगा। वह अपने पक्ष को बाँधकर रखेगा जिससे जीव नर्क को जायेंगे। वह शरीर का ज्ञान कथन सब समझायेगा परन्तु सत्यपुरूष के मार्ग को नहीं पायेगा।

धर्मदास, कालनिरंजन की चालबाजी की बात सुनो, वह जीवों को फ़ँसाने के लिये बड़े-बड़े फ़ंदों की रचना करता है। वह काल जीव को अनेक कर्म (पूजा आदि आडंबर, सामाजिक रीतिरिवाज) और कर्मजाल में ही जीव को फ़ाँस कर खा जाता है। जो जीव सारशब्द को पहचानता है, समझता है वह कालनिरंजन के यमजाल से छूट जाता है, और श्रद्धा से सत्यनाम का सुमरन करते हुये अमरलोक को जाता है।

'ग्यारहवें पंथ' को चलाने वाला 'दुर्गदानी' नाम का कालदूत अत्यन्त बलशाली होगा। वह 'जीवपंथ' नाम कहकर पंथ चलायेगा, और शरीरज्ञान के बारे में समझायेगा। उससे भोले अज्ञानी जीव भरमेंगे, और भवसागर से पार नहीं होंगे। जो जीव बहुत अधिक अभिमानी होगा। वह उस कालदूत की बात सुनकर उससे प्रेम करेगा।

'बारहवें पंथ' का कालदूत 'हंसमुनि' नाम का होगा। वह बहुत तरह के चरित्र करेगा। वह वचनवंश के घर में सेवक होगा, और पहले बहुत सेवा करेगा। फ़िर पीछे (अर्थात पहले विश्वास जमायेगा, और जब लोग उसको मानने लगेंगे) वह अपना मत प्रकट करेगा, और बहुत से जीवों को अपने जाल में फ़ँसा लेगा, और अंश-वंश (कबीर साहब के स्थापित ज्ञान) का विरोध करेगा। वह उसके ज्ञान की कुछ बातों को मानेगा कुछ को नहीं मानेगा।

इस प्रकार कालनिरंजन जीवों पर अपना दांव फ़ेंकते हुये उन्हें अपने फ़ंदे में (असलीज्ञान से दूर) बनाये रखेगा यानी ऐसी कोशिश करेगा। वह अपने इन अंशों (कालदूतों) से बारह पंथ (झूठेज्ञान को फ़ैलाने हेतु) प्रकट करायेगा, और ये दूत सिर्फ़ एकबार ही प्रकट नहीं होंगे बल्कि वे उन पंथों में बारबार आते-जाते रहेंगे, और इस तरह बारबार संसार में प्रकट होंगे।

जहाँ-जहाँ भी ये दूत प्रकट होंगे जीवों को बहुत ज्ञान (भरमाने वाला) कहेंगे, और वे यह सब खुद को कबीरपंथी बताते हुये करेंगे। और वे शरीरज्ञान का कथन करके सत्यज्ञान के नाम पर कालनिरंजन की ही महिमा को घुमाफ़िरा कर बतायेंगे, और अज्ञानी जीव को काल के मुँह में भेजते रहेंगे। कालनिरंजन ने ऐसा ही करने का उनको आदेश दिया है।

जब-जब निरंजन के ये दूत संसार में जन्म लेकर प्रकट होंगे तब-तब ये अपना पंथ फ़ैलायेंगे। वे जीवों को हैरान करने वाली विचित्र बातें बतायेंगे, और जीवों को भरमा कर नर्क में डालेंगे। धर्मदास, ऐसा वह कालनिरंजन बहुत ही प्रबल है। वह तथा उसके दूत कपट से जीवों को छलबुद्धि वाला ही बनायेंगे।

आत्मज्ञान की 'हंसदीक्षा' और 'परमहंस दीक्षा' में वाणी या अन्य इन्द्रियों का कोई स्थान नहीं हैं। दोनों ही दीक्षाओं में सुरति को दो अलग-अलग स्थानों से जोङा जाता है। मतलब ध्यान बारबार वहीं ले जाने का अभ्यास किया जाता है।

जब ध्यान पर साधक की पकङ हो जाती है तो ये ध्यान खुद-ब-खुद अपने आप होने लगता है, और तीन महीने के ही सही अभ्यास से दिव्यदर्शन, अन्तर्लोकों की सैर, भंवरगुफ़ा, आसमानी झूला आदि बहुत अनुभव होते हैं।

दूसरे, दीक्षा के बाद एक स्थायी सी शांति महसूस होती है जैसी पहले कभी महसूस नहीं की, और आपकी जिन्दगी में, स्वभाव में एक मजबूती सी आ जाती है। इसीलिये सन्तों ने कहा है - फ़िकर मत कर, जिकर कर।

चूङामणि का जन्म

धर्मदास बोले - प्रभु, अब आप मुझ पर कृपा करो जिससे संसार में वचनवंश प्रकट हो, और आगे पंथ चले।

कबीर बोले - धर्मदास, दस महीने में तुम्हारे जीवरूप में वंश प्रकट होगा, और अवतारी होकर जीवों के उद्धार के लिये ही संसार में आयेगा। ये तुम्हारा पुत्र ही मेरा अंश होगा।

धर्मदास ने कहा - साहिब, मैंने तो अपनी कामेंद्री को वश में कर लिया है फ़िर कैसे पुरूष के अंश 'नौतम सुरति' चूङामणि संसार में जन्म लेंगे।

कबीर साहब बोले - तुम दोनों स्त्री-पुरूष कामविषय की आसक्ति से दूर रहकर सिर्फ़ मन से रति करो। सत्यपुरूष का नाम पारस है, उसे पान पर लिखकर अपनी पत्नी आमिन को दो जिससे सत्यपुरूष का अंश नौतम जन्म लेगा।

तब धर्मदास की यह शंका दूर हो गयी कि बिना मैथुन के यह कैसे संभव होगा। फ़िर कबीर साहब के बताये अनुसार दोनों पति-पत्नी ने मन से रति की और पान दिया। जब दस मास पूरे हुये, तब मुक्तामणि का जन्म हुआ। इस पर धर्मदास ने बहुत दान किया। कबीर साहिब को पता चला कि मुक्तामणि का जन्म हो गया है, तो वे तुरन्त धर्मदास के घर पहुँचे।

और मुक्तामणि को देखकर बोले - यह मुक्तामणि मुक्ति का स्वरूप है। यह कालनिरंजन से जीवों को मुक्त करायेगा।

फ़िर कबीर साहिब मुक्तामणि की दीक्षा करते हुये बोले - मैंने तुमको वंश बयालीस का राज्य दिया। तुमसे बयालीस वंश होंगे, जो श्रद्धालु जीवों को तारेंगे। तुम्हारे उन वंश बयालीस से साठ शाखायें होंगी, और फ़िर उन शाखाओं से प्रशाखायें होंगी। तुम्हारी दस हजार तक प्रशाखायें होंगी। वंशों के साथ मिलकर उनका गुजारा होगा। लेकिन यदि तुम्हारे वंश उनसे संसारी सम्बन्ध मानकर नाता मानेंगे, तो उनको सत्यलोक प्राप्त नहीं होगा। इसलिये तुम्हारे वंश को मोहमाया से दूर रहना चाहिये।

धर्मदास, पहले मैंने तुमको जो ज्ञानवाणी का भंडार सौंपा था, वह सब चूङामणि को बता दो। तब बुद्धिमान चूङामणि ज्ञान से पूर्ण होंगे, जिसे देखकर काल भी चकनाचूर हो जायेगा।

धर्मदास ने कबीर साहब की आज्ञा का पालन किया, और दोनों ने कबीर के चरण स्पर्श किये। यह सब देखकर कालनिरंजन भय से काँपने लगा।

प्रसन्न होकर कबीर साहब बोले - धर्मदास, जो सत्यपुरूष के इस नामउपदेश को ग्रहण करेगा। उसका सत्यलोक जाने का रास्ता कालनिरंजन नहीं रोक सकता चाहे वह अठासी करोङ घाट ढूंढें। कोई मुख से करोङों ज्ञान की बातें कहता हो, और दिखावे के लिये बिना विधान के (कायदे से दीक्षा आदि के) कबीर कबीर का नाम जपता हो। व्यर्थ में कितना ही असार-कथन कहता हो परन्तु सत्यनाम को जाने बिना सब बेकार ही है। जो स्वयं को ज्ञानी समझकर ज्ञान के नाम पर बकवास करता हो, उसके ज्ञानरूपी व्यंजन के स्वाद को पूछो। करोङों यत्न से भी यदि भोजन तैयार हो परन्तु नमक बिना सब फ़ीका ही रहता है। जैसे भोजन की बात है, वैसे ही ज्ञान की बात है। हमारा ज्ञान का विस्तार चौदह करोङ है फ़िर भी सारशब्द (असली नाम) इनसे अलग और श्रेष्ठ है।

धर्मदास, जिस तरह आकाश में नौ लाख तारागण निकलते हैं, जिन्हें देखकर सब प्रसन्न होते हैं परन्तु एक सूर्य के निकलते ही सब तारों की चमक खत्म हो जाती है, और वे दिखायी नहीं देते। इसी तरह नौ लाख तारागण संसार के करोङों ज्ञान को समझो, और एक सूर्य आत्मज्ञानी सन्त को जानो। जैसे विशाल समुद्र को पार कराने वाला जहाज होता है उसी प्रकार अथाह भवसागर को पार करवाने वाला एकमात्र 'सारशब्द' ही है। मेरे सारशब्द को समझ कर जो जीव कौवे की चाल (विषयवासना में रुचि) छोङ देंगे तो वह सारशब्दग्राही हंस हो जायेंगे।

धर्मदास बोले - साहिब, मेरे मन में एक संशय है, कृपया उसे सुने। मुझे समर्थ सतपुरूष ने संसार में भेजा था परन्तु यहाँ आने पर कालनिरंजन ने मुझे फ़ँसा लिया। आप कहते हो, मैं सतसुकृत का अंश हूँ, तब भी भयंकर कालनिरंजन ने मुझे डस लिया। ऐसा ही आगे वंशों के साथ हुआ तो संसार के सभी जीव नष्ट हो जायेंगे इसलिये साहिब ऐसी कृपा करें कि कालनिरंजन वंशों को न छले।

कबीर बोले - धर्मदास, तुमने सत्य कहा, और ठीक सोचा, और तुम्हारा यह संशय होना भी सत्य है। आगे धर्मरायनिरंजन एक खेल तमाशा करेगा, उसे मैं तुमसे छिपाऊँगा नहीं। कालनिरंजन ने मुझसे सिर्फ़ बारह पंथ चलाने की बात कही थी, और अपने चार पंथों को गुप्त रखा था। जब मैंने चार गुरूओं का निर्माण किया तो उसने भी अपने चार अंश प्रकट किये, और उन्हें जीवों को फ़ँसाने के लिये बहुत प्रकार से समझाया।

अब आगे जैसा होगा, वह सुनो। जबतक तुम इस शरीर में रहोगे तबतक कालनिरंजन प्रकट नहीं होगा। जब तुम शरीर छोङोगे तभी काल आकर प्रकट होगा। काल आकर तुम्हारे वंश को छेदेगा, और धोखे में डालकर मोहित करेगा। वंश के बहुत नाद संत, महंत, कर्णधार होंगे। काल के प्रभाव से वे पारस वंश को विष के स्वाद जैसा करेंगे।

बिंदमूल और टकसार वंश के अन्दर मिश्रित होंगे। वंश में एक बहुत बड़ा धोखा होगा।

कालस्वरूप 'हंग' दूत उसकी देह में समायेगा, वह आपस में झगड़ा करायेगा। बिंदवंश के स्वभाव को हंगदूत नहीं छोड़ेगा। वह मन के द्वारा बिंदवंश को अपनी तरफ़ मोड़ेगा। मेरा अंश जो सत्यपंथ चलायेगा, उसे देखकर वह झगड़ा करेगा। उसके चिह्न अथवा चाल को वह नहीं देख सकेगा, और अपना रास्ता वंश में देखेगा।

वंश अपने अनुभवग्रन्थ कथ कर (कह कर) रखेगा परन्तु नादपुत्र की निंदा करेगा। तब उन अनुभवग्रन्थों को वंश के कर्णधार संत, महंत पढ़ेंगे जिससे उनको बहुत अहंकार होगा। वे स्वार्थ और अहंकार को समझ नहीं पायेंगे, और ज्ञान कल्याण के नाम पर जीवों को भटकायेंगे। इसी से मैं तुम्हें समझाकर कहता हूँ, अपने वंश को सावधान कर दो। नादपुत्र जो प्रकट होगा, उससे सब प्रेम से मिलें।

धर्मदास, इसी मन से समझो। तुम सर्वथा विषयविकारों से रहित मेरे नादपुत्र (शब्द से उत्पन्न) हो। कमाल पुत्र, जो मैंने मृतक से जीवित किया था, उसके घट (शरीर) के भीतर भी कालदूत समा गया। उसने मुझे पिता जानकर अहंकार किया, तब मैंने अपना ज्ञानधन तुमको दिया।

मैं तो प्रेमभाव का भूखा हूँ, हाथी, घोड़े, धन, दौलत की चाह मुझे नहीं है। अनन्यप्रेम और भक्ति से जो मुझे अपनायेगा, वह हंसभक्त ही मेरे ह्रदय समायेगा। यदि मैं अहंकार से ही प्रसन्न होने वाला होता तो मैं सब ज्ञान, ध्यान, आध्यात्म, पंडित-काजी को न सौंप देता। जब मैंने तुम्हें प्रेम में लगन लगाये अपने अधीन देखा तो अपनी सब अलौकिक ज्ञान-संपदा ही सौंप दी। ऐसे ही धर्मदास आगे सुपात्र लोगों को तुम यह ज्ञान देना।

धर्मदास, अच्छी तरह जान लो, जहाँ अहंकार होता है, वहाँ मैं नहीं होता। जहाँ अहंकार होता है, वहाँ सब कालस्वरूप ही होता है। अतः अहंकारी मुक्ति के अनोखे सत्यलोक को नहीं पा सकता।

*मुक्तामणि और चूड़ामणि एक ही अंश के दो नाम हैं।

काल का अपने दूतों को चाल समझाना

धर्मदास बोले - साहिब, जीवों के उद्धार के लिये जो वचनवंश 'चूड़ामणि' संसार में आया वह सब आपने बताया। वचनवंश को जो ज्ञानी पहचान लेगा, उसको कालनिरंजन का 'दुर्गदानी' जैसा दूत भी नहीं रोक पायेगा। तीसरा सुरति अंश 'चूड़ामणि' संसार में प्रकट हुआ है, वह मैंने देख लिया फ़िर भी मुझे एक संशय है।
साहिब, मुझे समर्थ सत्यपुरूष ने भेजा था परन्तु संसार में आकर मैं भी कालनिरंजन के जाल में फ़ँस गया। आप मुझे 'सतसुकृत' का अंश कहते हो तब भी भयंकर कालनिरंजन ने मुझे डस लिया। अगर ऐसा ही सब वंशों के साथ हुआ, तो संसार के सब जीव नष्ट हो जायेंगे, इसलिये ऐसी कृपा करिये कि कालनिरंजन सत्यपुरूष के वंशों को अपने छलभेद से न छल पाये।

कबीर साहिब बोले - यह तुमने ठीक कहा, और तुम्हारा संशय सत्य है। भविष्य में कालनिरंजन क्या चाल खेलेगा, वह बताता हूँ। सतयुग मैं सत्यपुरूष ने मुझे बुलाया, और संसार में जाकर जीवों को चेताने के लिये कहा तो

कालनिरंजन ने रास्ते में मुझसे झगडा किया, और मैंने उसका घमण्ड चूर-चूर कर दिया। पर उसने मेरे साथ एक धोखा किया, और याचना करते हुये मुझसे तीनयुग मांग लिये।

अन्यायी कालनिरंजन ने तब कहा - भाई मैं चौथा कलियुग नहीं माँगता।
और मैंने उसे वचन दे दिया, और तब जीवों के कल्याण हेतु संसार में आया क्योंकि मैंने उसको तीन युग दे दिये थे। उसी से उस समय वचनमर्यादा के कारण अपना पंथ प्रकट नहीं किया। लेकिन जब चौथा कलियुग आया, तब सत्यपुरूष ने फ़िर से मुझे संसार में भेजा। पहले की ही तरह कसाई कालनिरंजन ने मुझे रास्ते में रोका, और मेरे साथ झगडा किया। वह बात मैंने तुम्हें बता दी है, और कालनिरंजन के बारह पंथ का भेद भी बता दिया।

कालनिरंजन ने मुझसे धोखा किया, उसने मुझसे केवल 'बारह पंथ' की बात कही, और गुप्त बात मुझको नहीं बतायी। तीन युग में तो वचन लेकर उसने मुझे विवश कर दिया, और कलियुग में बहुत जाल रचकर ऊधम मचाया। काल ने मुझसे सिर्फ़ बारह पंथ की कहकर गुप्तरूप से 'चार पंथ' और बनाये।

जब मैंने जीवों को चेताने के लिये चार कडिहार गुरू के निर्माण की व्यवस्था की तो काल ने अपना अंशदूत भेज दिया तथा अपनी छलबुद्धि का विस्तार किया, और अपने चार अंशदूतों को बहुत शिक्षा दी।

कालनिरंजन ने दूतों से कहा - अंशो, सुनो, तुम तो मेरे वंश हो तुमसे जो कहूँ, उसे मानो, और मेरी आज्ञा का पालन करो। भाई, हमारा एक दुश्मन है, जो संसार में कबीर नाम से जाना जाता है। वह हमारा भवसागर मिटाना चाहता है, और जीवों को दूसरे लोक (सत्यलोक) ले जाना चाहता है। वह छल-कपट कर मेरी पूजा के विरुद्ध जगत में भ्रम फ़ैलाता है, और मेरी तरफ़ से सबका मन हटा देता है। वह सत्यनाम की समधुर टेर सुनाकर जीवों को सत्यलोक ले जाता है। इस संसार को प्रकाशित करने में मैंने अपना मन दिया हुआ है, और इसलिये मैंने तुमको उत्पन्न किया। मेरी आज्ञा मानकर तुम संसार में जाओ, और कबीर नाम से झूठेपंथ प्रकट करो। संसार के लालची और मूर्ख जीव काम, मोह, विषयवासना आदि विषयों के रस में मग्न हैं अतः मैं जो कहता हूँ, उसी अनुसार उन पर घात लगाकर हमला करो।
संसार में तुम 'चार पंथ' स्थापित करो, और उनको अपनी-अपनी (झूठी) राह बताओ। चारो के नाम कबीर नाम पर ही रखो, और बिना कबीर शब्द लगाये मुँह से कोई बात ही न बोलो, अर्थात इस तरह कहो, कबीर ने ऐसा कहा, कबीर ने वैसा कहा। जैसे तुम कबीरवाणी का उपदेश कर रहे होओ।
कबीर नाम के वशीभूत होकर जब जीव तुम्हारे पास आये, तो उससे ऐसे मीठे वचन कहो जो उसके मन को अच्छे लगते हों (अर्थात चोट मारने वाले वाले सत्यज्ञान की बजाय उसको अच्छी लगने वाली मीठी मीठी बातें करो क्योंकि तुम्हें जीव को झूठ में उलझाना है)

कलियुग के लालची, मूर्ख, अज्ञानी जीवों को ज्ञान की समझ नहीं है वे देखादेखी की रास्ता चलते हैं। तुम्हारे वचन सुनकर वे प्रसन्न होंगे, और बारबार तुम्हारे पास आयेंगे। जब उनकी श्रद्धा पक्की हो जाय, और वे कोई भेदभाव न मानें, यानी सत्य के रास्ते और तुम्हारे झूठ के रास्ते को एक ही समझने लगें, तब तुम उन पर अपना जाल डाल दो। पर बेहद होशियारी से, कोई इस रहस्य को जानने न पाये।

तुम जम्बूदीप (भारत) में अपना स्थान बनाओ, जहाँ कबीर के नाम और ज्ञान का प्रमाण है। जब कबीर बाँधोंगढ (छत्तीसगढ़) में जायें, और धर्मदास को उपदेश-दीक्षा आदि दें, तब वे उसके बयालीस वंश के ज्ञानराज्य को स्थापित करेंगे। तब तुम्हें उसमें घुसपैठ करके उनके राज्य को डांवाडोल करना है। मैंने चौदह यमों की नाकाबन्दी करके जीव

के सत्यलोक जाने का मार्ग रोक दिया है, और कबीर के नाम पर बारह झूठेपंथ चलाकर जीव को धोखे में डाल दिया है। भाई, तब भी मुझे संशय है, उसी से मैं तुमको वहाँ भेजता हूँ। उनके बयालीस वंशों पर तुम हमला करो, और उन्हें अपनी बातों में फ़ँसा लो।

कालनिरंजन की बात सुनकर वे चारों दूत बोले - हम ऐसा ही करेंगे।

यह सुनकर कालनिरंजन बहुत प्रसन्न हुआ, और जीवों को छल-कपट द्वारा धोखे में रखने के बहुत से उपाय बताने लगा। जीवों पर हमला करने के उसने बहुत से मन्त्र सुनाये।

उसने कहा - अब तुम संसार में जाओ, और चारों तरफ़ फ़ैल जाओ। ऊँच, नीच, गरीब, अमीर किसी को मत छोङो, और सब पर काल का फ़ँदा कस दो। तुम ऐसी कपट-चालाकी करो कि जिससे मेरा आहार जीव कहीं निकल कर न जाने पाये।

धर्मदास, यही चारो दूत संसार में प्रगट होंगे, जो चार अलग-अलग नामों से कबीर के नाम पर पंथ चलायेंगे। इन चार दूतों को मेरे चलाये बारह पंथों का मुखिया मानो। इनसे जो चार पंथ चलेंगे, उससे सब ज्ञान उलट-पुलट हो जायेगा। ये चार पंथ, बारह पंथों का मूल यानी आधार होंगे जो वचनवंश के लिये शूल के समान पीङादायक होंगे, यानी हर तरह से उनके कार्य में विघ्न करते हुये जीवों के उद्धार में बाधा पहुँचायेंगे।

यह सुनकर धर्मदास घबरा गये, और बोले - साहिब, अब मेरा संशय और भी बढ़ गया है, मुझे उन कालदूतों के बारे में अवश्य बताओ। उनका चरित्र मुझे सुनाओ। उन कालदूतों का वेश और उनका लक्षण कहो। ये संसार में कौन सा रूप बनायेंगे, और किस प्रकार जीवों को मारेंगे। वे कौन से देश में प्रकट होंगे, मुझे शीघ्र बताओ।

काल के चार दूत

कबीर साहब बोले - धर्मदास, उन चार दूतों के बारे में तुमसे समझा कर कहता हूँ। उन चार दूतों के नाम - रंभदूत, कुरंभदूत, जयदूत और विजयदूत हैं। अब 'रंभदूत' की बात सुनो।

यह भारत के गढ़ कांलिंजर में अपनी गद्दी स्थापित करेगा, और अपना नाम भगत रखेगा, और बहुत जीवों को अपना शिष्य बनायेगा। जो कोई जीव अंकुरी होगा, अर्थात जिसमें सत्यज्ञान के प्रति चेतना होगी, तथा जिसके पूर्व के शुभकर्म होंगे वह यम (कालनिरंजन) के इस फ़ँदे को तोङकर बच जायेगा।

वह कालरूप रंभदूत बहुत बलवान तथा षङयंत्र करने वाला होगा, वह तुम्हारी और मेरी वार्ता का खंडन करेगा। वह दीक्षाविधान को रोकेगा, और सत्यपुरूष के सत्यलोक और दीपों को झूठा बतायेगा। वह अपनी 'अलग ही रमैनी' कहेगा। वह मेरी सत्यवाणी के प्रति विवाद करेगा, जिसके कारण उसके जाल में बहुत लोग फ़ँसेंगे।

चारों धाराओं का अपने मतानुसार ज्ञान करेगा। मेरा नाम कबीर जोङकर अपना झूठा प्रचार-प्रसार करेगा। वह अपने आपको कबीर ही बतायेगा, और मुझे पाँच-तत्व की देह में बसा हुआ बतायेगा। वह जीव को सत्यपुरूष के समान

सिद्ध करेगा तथा सत्यपुरूष का खंडन कर जीव को श्रेष्ठ बतायेगा। हंसजीव को इष्ट कबीर ठहरायेगा, तथा कर्ता को कबीर कहकर पुकारेगा।

सबका कर्ता कालनिरंजन जीवों को घोर दुख देने वाला है, और उसके ही समान यह यमदूत मुझे भी समझता है। वह कर्म करने वाले जीव को ही सत्यपुरूष ठहरायेगा, और सत्यपुरूष के नाम-ज्ञान को छिपाकर अपने आपको प्रकट करेगा। विचार करो, जीव अपने आप ही सब होता, तो इस तरह अनेक दुख क्यों भोगता? पाँच-तत्व की देह वाला, पाँच-तत्व के अधीन हुआ, ये जीव दुख पाता है, और रम्भदूत जीव को सत्यपुरूष के समान बताता है।

सत्यपुरूष का शरीर अजर-अमर है उनकी अनेक कलायें हैं, तथा उनका रूप और छाया नहीं है। धर्मदास, ये गुरूज्ञान अनुपम है, जिसमें बिना दर्पण के अपना रूप दिखायी देता है।

अब दूसरे 'कुरंभ दूत' का वर्णन सुनो। वह मगध देश में प्रकट होगा, और अपना नाम धनीदास रखेगा। कुरंभ छल-प्रपंच के बहुत से जाल बिछायेगा, और ज्ञानीजीवों को भी भटकायेगा। जिसके ह्रदय में थोड़ा भी आत्मज्ञान होगा, ये यमदूत धोखा देकर उसे नष्ट कर देगा।

धर्मदास, इस कुरंभ की चालबाजी सुनो। यह अपने कथन की टकसार बताकर मजबूत जाल सजायेगा। वह चन्द्र, इड़ा, सूर्य, पिंगला नाड़ियों के अनुसार शुभ-अशुभ लगन का प्रचार-प्रसार करेगा तथा राहु-केतु आदि ग्रहों का विस्तार से वर्णन करेगा। वह पाँच-तत्व तथा उनके गुणों के मत को श्रेष्ठ बताकर उनका वर्णन करेगा तब अज्ञानी जीव उसके फ़ैलाये भ्रम को नहीं जानेंगे। वह ज्योतिष के मत को टकसार कहकर फ़ैलायेगा, और जीवों को ग्रह-नक्षत्र तथा इन्द्रियों के वश में करके, उनका असली सत्यपुरूष की भक्ति से ध्यान हटा देगा।

वह जल, वायु का ज्ञान बतायेगा, और पवन के विभिन्न नामों और गुणों का वर्णन करेगा। वह सत्य से हटकर ऐसी पूजाविधान चलाकर जीवों को धोखा देकर भरमायेगा, भटकायेगा। वह अपने शिष्य बनाते समय विशेष नाटक करेगा। अंग-अंग की रेखा देखेगा, और पाँव के नाखून से सिर की चोटी को देखते हुये जीवों को कर्मजाल में फ़ँसाकर भरमायेगा।

वह जीव को देख-समझ कर तथा शूरवीर कहकर मोह, मद में चढ़ा कर धर खायेगा। भरमाये हुये अपने शिष्यों से दक्षिणा में स्वर्ण तथा स्त्री अर्पण करायेगा। इस प्रकार वह जीवों को ठगेगा। शिष्य को गाँठ बाँधकर तब वह फ़ेरा करेगा, और कर्मदोष लगाकर उसे यम का गुलाम बना देगा।

पचासी पवन काल के हैं अतः वह शिष्य को पवन नाम लिखकर पान खिलायेगा। वह नीर, पवन के ज्ञान का प्रसार करेगा, और शिष्यों को पवन नाम देकर आरती उतरवायेगा। काल के पचासी पवन अनुसार पूजा करायेगा। क्या नारी, क्या पुरूष वह सबके शरीर के तिल, मस्से की पहचान देखा करेगा। शंख, चक्र और सीप के चिन्ह देखेगा। कालनिरंजन का वह दूत ऐसी दुष्टबुद्धि का होगा, और जीवों में संशय उत्पन्न करेगा तथा उन्हें ग्रसित (बरबाद) करते हुये पीड़ित करेगा।

इस कालदूत का और भी झूठ-प्रपंच सुनो। वह अपनी 'साठ समै' तथा 'बारह चौपाईयों' को उठाकर जीवों में भ्रम उत्पन्न करेगा। वह 'पंचामृत एकोत्तर नाम' का सुमिरन को श्रेष्ठशब्द और मुक्तिदाता बतायेगा। जीवों के कल्याण का जो असलीज्ञान, आदिकाल से निश्चित है, वह उसे झूठ और धोखा बतायेगा तथा पाँच-तत्व, पच्चीस प्रकृति,

तीन गुण, चौदह यम यही ईश्वर है अर्थात ऐसा कहेगा, तुम ही सब कुछ हो। पाँच-तत्व का जाल बनाकर यह यमदूत शरीर के तत्वों का ध्यान करायेगा। विचार करो कि तत्वों का ध्यान लगायें तब शरीर छूटने पर कहाँ जायेंगे? तत्व तो तत्व में मिल जायेगा।

धर्मदास, जीव को जहाँ आशा होती है, वहीं उसका वास होता है अतः नाम-सुमरन से ध्यान हटने पर तत्व में उलझ कर वह तत्व में ही समायेगा। कहाँ तक कहूँ, कुरंभ घमासान विनाश करेगा। उसके छल को वही समझेगा, जो जीव सत्यनाम उपदेश को ग्रहण करने वाला, और समझने वाला होगा।
पाँचों जड़तत्व तो काल के अंग है, अतः तत्वों के मत में पड़कर जीव की दुर्गति ही होगी, और यह सब कुछ वह कबीर के नाम पर, खुद को कबीरपंथी बताकर, इसको कबीर का ज्ञान बताकर करेगा। जो जीव उसके जाल में फ़ँस जायेंगे, वह क्रूर कालनिरंजन के मुख में ही जायेंगे।

अब तीसरे दूत 'जयदूत' के बारे में जानो। यह यमदूत बड़ा विकराल होगा। यह झूठा-प्रपंची अपनी वाणी को आदि, अनादि (वाणी) कहेगा। यह जयदूत 'कुरकुट ग्राम' में प्रकट होगा, जो बाँधौगढ के पास ही है। वह 'चमार कुल' में उत्पन्न होगा, और ऊँचेकुल वालों की जाति को बिगाड़ने की कोशिश करेगा। यह यमदूत 'दास' कहायेगा, और 'गणपत' नाम का उसका पुत्र होगा। वे दोनों पिता, पुत्र प्रबल कालस्वरूप दुखदायी होंगे, और तुम्हारे वंश को आकर घेरेंगे अर्थात जीवों के उद्धार में यथाशक्ति बाधा पहुँचायेंगे।

वह कहेगा, असलीज्ञान हमारे पास है। धर्मदास, वह तुम्हारे वंश को उठा देगा अर्थात प्रभाव खत्म करने की कोशिश करेगा। वह अपना अनुभव कहकर अपने बहुत से ग्रन्थ बनायेगा, और उसमें ज्ञानीपुरूष के समान संवाद बनायेगा। वह कहेगा कि 'मूलज्ञान' तो सत्यपुरूष ने मुझे दिया है। धर्मदास के पास मूलज्ञान नहीं है।

वह तुम्हारे वंश को भरमा देगा, और ज्ञानमार्ग को विचलित करेगा। वह तुम्हारे वंश में अपना मत पक्का करेगा, और मूल 'पारस-थाका' पंथ चलायेगा। मूलछाप लेकर वंश को बिगाड़ेगा। वह कालदूत अपना मूल पारस देकर सबकी वैसी ही बुद्धि कर देगा। वह भीतर शून्य में झंकृत होने वाले 'झंग' शब्द की बात करेगा, जिससे ज्ञानहीन कच्चेजीव को भुलावा देगा।

पुरूष-स्त्री के जिस रज-वीर्य से शरीररचना होती है उसको वह अपना मूलमत प्रचलित करेगा। शरीर का मूल 'आधारबीज' कामविषय है, परन्तु उसका नाम वह गुप्त रखेगा। पहले तो वह अपना मूलआधार थाका ही गुप्त रखेगा। फ़िर जब शिष्यों को जोड़कर पूरी तरह साध लेगा तब उसका वर्णन करेगा।

पहले तो ज्ञान-ग्रन्थों को समझायेगा फ़िर पीछे से अपना मत पक्का करायेगा। वह स्त्री के अंग को पारस ज्ञान देगा, जिसे आज्ञा मानकर उसके सब शिष्य लेंगे। पहले वह ज्ञान का शब्द-उपदेश समझायेगा फ़िर कामविषय वासना जो नर्क की खान है, उसे वह मूल बखानेगा।

वह 'झांझरी दीप' की कथा सुनायेगा। पाँच-तत्व से बने शरीर की 'शून्यगुफ़ा' में जाकर ये पाँचों-तत्व बहुत प्रकार से रंगीन चमकीला प्रकाश बनाते हैं। उस गुफ़ा में 'हंग' शब्द बहुत जोर से उठता है। जब 'सोऽहंगम' जीव अपना शरीर छोड़ेगा, तब कौन से विधि से 'झंग' शब्द उसके सामने आयेगा? क्योंकि वह तो शरीर के रहने तक ही होता है, शरीर के छूटते ही वह भी समाप्त हो जायेगा।

'झांझरी दीप' कालनिरंजन ने रच रखा है, और 'झंग-हंग' दोनों काल की ही शाखा हैं। ये अन्यायी कालदूत अविहर (स्त्री-पुरूष कामसम्बन्ध) ज्ञान कहेगा। 'अविहर ज्ञान' कालनिरंजन का धोखा है। वह तुम्हारे ज्ञान की भी महिमा शामिल करके मिलाकर कहेगा। इसलिये उसके मत में बहुत से कड़िहार, महंत होंगे। वह कालदूत स्थान-स्थान पर नीचकर्म करेगा, और हमारी बात करते हुये हम पर ही हँसेगा अतः अज्ञानी संसारी लोग समझेंगे कि यह सब समान हैं अर्थात कबीर का मत और 'जयदूत' का मत एक ही है। जब कोई इस भेद को जानने की कोशिश करेगा तभी उसे पता चलेगा।

जिसके हाथ में सतनामरूपी दीपक होगा, वह हंसजीव काल के इस जंजाल को त्याग कर अपना कल्याण करेगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। ये कपटीकाल बगुले का ध्यान लगाये रहेगा, और सत्यनाम को छोड़कर, कालसम्बन्धी नामों को प्रकटायेगा।

अब चौथे 'विजयदूत' की बात सुनो। यह बुन्देलखन्ड में प्रकट होगा, और अपना नाम 'जीव' धरायेगा। यह विजयदूत 'सखाभाव' की भक्ति पक्की करेगा। यह सखियों के साथ रास रचायेगा और मुरली बजायेगा। अनेक सखियों के संग लगन प्रेम लगायेगा, और अपने आपको दूसरा कृष्ण कहायेगा। वह जीवों को धोखा देकर फ़ाँसेगा।

और कहेगा - आँखों के आगे 'मन की छाया' रहती है, और नाक के ऊपर की ओर आकाश 'शून्य' है। आँख और कान बन्द कर ध्यान लगाने की स्थिति में कोहरा जैसा दीखता है। सफ़ेद, काला, नीला, पीला आदि रंग दिखना, चित्त की क्रियायें हैं परन्तु वह मुक्ति के नाम पर उनमें जीवों को डालकर भरमायेगा।

ये सब काल का धोखा है, यह प्रतिक्षण बदलती क्रियायें स्थिर हैं, जो शरीर की आँखों से देखी जाती हैं। अतः यह कालदूत मन की छाया, माया दिखायेगा, और मुक्ति का मूल छाया को बतायेगा। यह 'सत्यनाम' से जीव को भटका कर काल के मुख में ले जायेगा।

सात, पाँच के मायाजाल में फ़ँसा जीव

कबीर बोले - धर्मदास, सदगुरू सर्वोपरि हैं अतः शिष्य को चाहिये कि गुरू से अधिक किसी को न माने, और गुरू के सिखाये हुये को सत्य करके जाने। एक समय ऐसा भी आयेगा, जब तुम्हारा बिंदवंश उल्टा काम करेगा। वह बिना गुरू के भवसागर से पार होना चाहेगा। जो निगुरा होकर जगत को समझाता है अर्थात ज्ञान बताता है वह खुद तो डूबेगा ही तथा संसार के जीवों को भी डुबायेगा, बिना गुरू के कल्याण नहीं होता। जो गुरू के शरणागत होता है, वह संसारसागर से पार हो जाता है। कालनिरंजन अनेक प्रकार से जीवों को धोखे में डालता है अतः बिना गुरू के जीवों को अहंकारवश ज्ञान कहते देखकर काल बहुत खुश होता है।

धर्मदास बोले - साहिब, कृपा कर 'नाद-बिंद' ज्ञान समझाने की कृपा करें।

कबीर बोले - बिंद एक, और नाद बहुत से होते हैं। जो बिंद की भांति मिले, वह बिंद कहाता है। वचनवंश सत्यपुरूष का अंश है, उसके ज्ञान से जीव संसार से छूट जाता है। नाद और बिंदवंश एक साथ होंगे, तब उनसे काल मुँह छुपाकर रहेगा। जैसे मैंने तुम्हें बताया, वैसे नादबिंद योग (योग का एक तरीका, प्रकार) एक करना क्योंकि बिना

नाद तो बिंद का भी विस्तार नहीं होता, और बिना बिंद नाद नहीं उबरेगा।

इस कलियुग में काल बहुत प्रबल है, जो अहंकाररूप धर सबको खाता है। नाद अहंकार त्याग कर होगा, और बिंद का अहंकार बिंद सजायेगा। इसी से सत्यपुरूष ने इन दोनों को अनुशासित करने के लिये मर्यादा (नियम) में बाँधा, और नाद-बिंद दो रूप बनाये। जो अहंकार छोड़कर सत्यस्वरूप परमात्मा को भजेगा, उसका ध्यान, सुमरन करेगा। वह हंस-स्वरूप हो जायेगा। नाद-बिंद दोनों कोई हों अहंकार सबके लिये हानिकारक ही है। इसलिये यह निश्चित है, जो अहंकार करेगा, वह भवसागर में डूबेगा।

धर्मदास बोले - साहिब, आपने नाद-बिंद के बारे में बताया अब मेरे मन में एक बात आ रही है, आपके विरोधी, मेरे पुत्र नारायण दास का क्या होगा? वह संसार के नाते मेरा पुत्र है, इसलिये चिंता होती है। सत्यनाम को ग्रहण करने वाले जीव सत्यलोक को जायेंगे, और नारायण दास काल के मुँह में जायेगा, यह तो अच्छी बात न होगी।

कबीर साहब बोले - धर्मदास, मैंने तुमको बारबार समझाया पर तुम्हारी समझ में नहीं आया। अगर चौदह यमदूत ही मुक्त होकर सत्यलोक चले जायेंगे, तो फ़िर जीवों को फ़ँसाने के लिये फ़ंदा कौन लगायेगा?
अब मैंने तुम्हारा ज्ञान समझा। तुम मेरी बातों की परवाह न करके मोहमाया द्वारा सत्यपुरूष की आज्ञा को मिटाने में लगे हुये हो। जब मनुष्य के मन में मोह अंधकार छा जाता है, तब सारा ज्ञान भूलकर वह अपना परमार्थ कर्म नष्ट करता है। बिना विश्वास के भक्ति नहीं होती, और बिना भक्ति के कोई जीव भवसागर से नहीं तर सकता।

फ़िर से तुम्हें काल फ़ँदा लगा है। तुमने प्रत्यक्ष देखा कि नारायण दास कालदूत है फ़िर भी तुमने उसे पुत्र मानने का हठ किया। जब तुम्हें ही मेरे वचनों पर विश्वास नहीं आता तो संसारी लोग गुरूओं पर क्या विश्वास करेंगे? जो अहंकार को छोड़कर गुरू की शरण में आता है, वही सदगति पाता है। जो त्रिगुणी माया को पकड़ते हैं, उनमें मोहमद जाग जाता है, और वे अभागे भक्ति-ज्ञान सब त्याग देते हैं। जब तुम ही गुरू का विश्वास त्याग दोगे। जो जीवों का उद्धार करने वाले हो तब सामान्य जीवों का क्या ठिकाना। इस प्रकार भ्रमित करने की यही तो कालनिरंजन की सही पहचान है।

धर्मदास, सुनो, जैसा तुम कह रहे हो, वैसा ही तुम्हारा वंश भी प्रकाशित करेगा। मोह की आग में वह सदा जलेगा, और इसी से तुम्हारे वंश में विरोध पड़ेगा। जिससे दुख होगा। पुत्र, धन, घर, स्त्री, परिवार और कुल का अभिमान यह सब काल ही का तो विस्तार है। वह इन्हीं को माध्यम बनाकर जीव को बँधन में डालता है। इनसे तुम्हारा वंश भूल में पड़ जायेगा, और सत्यनाम की राह नहीं पायेगा। संसार के अन्य वंश की देखादेखी तुम्हारे वंश के लोग भी पुत्र, धन, घर, परिवार आदि के मोह में पड़ जायेंगे, और यह देखकर कालदूत बहुत प्रसन्न होंगे। तब कालदूत प्रबल हो जायेंगे, और जीवों को नर्क भेजेंगे।

कालनिरंजन अपने जाल में जीव को जब फ़ँसाता है तो उसे काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह विषयों में भुला देता है। फ़िर उसे गुरू के वचनों पर विश्वास नहीं रहता, तब सत्यनाम की बात सुनते ही वह जीव चिढ़ने लगता है। गुरू पर विश्वास न करने का यही लक्षण है।

धर्मदास, जिसके घट (शरीर) में सत्यनाम समा गया है, उसकी पहचान कहता हूँ ध्यान से सुनो। उस भक्त को काल का वाण नहीं लगता, और उसे काम, क्रोध, मद, लोभ नहीं सताते। वह झूठी मोह, तृष्णा तथा सांसारिक वस्तुओं की आशा त्याग कर सदगुरू के सत्यवचनों में मन लगाता है। जैसे सर्प मणि को धारण कर प्रकाशित होता

है। ऐसे ही शिष्य सदगुरू की आज्ञा को अपने ह्रदय में धारण करे तथा समस्त विषयों को भुलाकर विवेकी हंस बनकर, अविनाशी निज मुक्तस्वरूप सत्यपद प्राप्त करे।

सदगुरू के वचन पर अटल और अभिमानरहित कोई बिरला ही शूरवीर संत प्राप्त करता है, और उसके लिये मुक्ति दूर नहीं होती। इस प्रकार जीवित ही मुक्तिस्थिति का अनुभव और मुक्ति प्रदान कराना सदगुरू का ही प्रताप है अतः सदगुरू के चरणों में ही प्रेम करो, और सब पापकर्म, अज्ञान एवं सांसारिक विषय विकारों को त्याग दो। अपने नाशवान शरीर को धूल के समान समझो।

यह सुनकर धर्मदास सकपका गये। वह कबीर साहब के चरणों में गिर पङे, और दुखी स्वर में बोले - प्रभु, मैं अज्ञान से अचेत हो गया था, मुझ पर कृपा करें, कृपा करें। मेरी भूल-चूक क्षमा करें। जो नारायण दास के लिये मैंने जिद की थी, वह अज्ञान में खुद को पिता जानकर की थी अतः मेरी इस भूल को क्षमा करें।

कबीर बोले - धर्मदास, तुम सत्यपुरूष के अंश हो, परन्तु वंश नारायण दास काल का दूत है। उसे त्याग दो, और जीवों का कल्याण करने के लिये भवसागर में सत्यपंथ चलाओ।

यह सुनकर धर्मदास कबीर साहब के पैरों पर गिर पङे, और बोले - आज से मैंने अपने उस पुत्ररूप कालदूत को त्याग दिया। अब आपको छोङकर किसी और की आशा करूँ तो मैं सत्यसंकल्प के साथ कहता हूँ मेरा नर्क में वास हो।

कबीर साहब प्रसन्नता से बोले - धर्मदास, तुम धन्य हो, जो मुझको पहचान लिया, और नारायण दास को त्याग दिया। जब शिष्य के ह्रदयरूपी दर्पण में मैल नहीं होगा, गुरू का स्वरूप तब ही दिखायी देगा। जब शिष्य अपने पवित्र ह्रदय में सदगुरू के श्रीचरणों को रखता है, तो काल की सब शाखाओं के समस्त बंधनों को मिटाता है परन्तु जबतक वह सात, पाँच (सात स्वर्ग, काल तथा माया (के) तीनों पुत्र, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ये पाँच) की आशा लगी रहेगी तबतक वह शिष्य गुरूपद की महिमा नहीं समझ पायेगा।

गुरू-शिष्य, विचार-रहनी

धर्मदास बोले - साहिब, आप गुरू हो, मैं दास हूँ। अब मुझे गुरू-शिष्य की रहनी समझा कर कहो।

कबीर बोले - गुरू का व्रत धारण करने वाले शिष्य को समझना चाहिये कि निर्गुण-सगुण के बीच गुरू ही आधार होता है। गुरू के बिना आचार, अन्दर-बाहर की पवित्रता नहीं होती, और गुरू के बिना कोई भवसागर से पार नहीं होता। शिष्य को सीप और गुरू को स्वाति बूँद के समान समझना चाहिये। गुरू के सम्पर्क से तुच्छजीव (सीप) मोती के समान अनमोल हो जाता है। गुरू पारस और शिष्य लोहे के समान है जैसे पारस लोहे को सोना बना देता है। गुरू मलयागिरि चंदन के समान है, शिष्य विषैले सर्प की तरह होता है। इस प्रकार वह गुरू की कृपा से शीतल होता है। गुरू समुद्र, तो शिष्य उसमें उठने वाली तरंग है। गुरू दीपक है, तो शिष्य उसमें समर्पित हुआ पतंगा है।

गुरू चन्द्रमा है, तो शिष्य चकोर है। गुरू सूर्य हैं, जो कमलरूपी शिष्य को विकसित करते हैं। इस प्रकार गुरूप्रेम को

शिष्य विश्वासपूर्वक प्राप्त करे। गुरू के चरणों का स्पर्श, और दर्शन प्राप्त करे। जब इस तरह कोई शिष्य गुरू का विशेष ध्यान करता है तब वह भी गुरू के समान होता है।

धर्मदास, गुरू एवं गुरूओं में भी भेद है। यूँ तो सभी संसार ही गुरू-गुरू कहता है परन्तु वास्तव में गुरू वही है, जो सत्यशब्द या सारशब्द का ज्ञान कराने वाला है। उसका जगाने वाला या दिखाने वाला है, और सत्यज्ञान के अनुसार आवागमन से मुक्ति दिलाकर आत्मा को उसके निजघर सत्यलोक पहुँचाये। गुरू, जो मृत्यु से हमेशा के लिये छुङाकर अमृतशब्द (सारशब्द) दिखाते हैं जिसकी शक्ति से हंसजीव अपने घर सत्यलोक को जाता है। उस गुरू में कुछ छल-भेद नहीं है अर्थात वह सच्चा ही है। ऐसे गुरू तथा उनके शिष्य का मत एक ही होता है, जबकि दूसरे गुरू-शिष्य में मतभेद होता है।

संसार के लोगों के मन में अनेक प्रकार के कर्म करने की भावना है। यह सारा संसार उसी से लिपटा पङा है। कालनिरंजन ने जीव को भ्रमजाल में डाल दिया है जिससे उबर कर वह अपने ही इस सत्य को नहीं जान पाता कि वह नित्य अविनाशी और चैतन्य ज्ञानस्वरूप है।

इस संसार में गुरू बहुत हैं परन्तु वे सभी झूठी मान्यताओं और अंधविश्वास के बनावटी जाल में फ़ँसे हुये हैं, और दूसरे जीवों को भी फ़ँसाते है लेकिन समर्थसदगुरू के बिना जीव का भ्रम कभी नहीं मिटेगा। क्योंकि कालनिरंजन भी बहुत बलवान और भयंकर है अतः ऐसी झूठी मान्यताओं अंधविश्वासों एवं परम्पराओं के फ़ंदे से छुङाने वाले सदगुरू की बलिहारी है, जो सत्यज्ञान का अजर-अमर संदेश बताते हैं।
अतः रात-दिन शिष्य अपनी सुरति सदगुरू से लगाये, और पवित्र सेवाभावना से सच्चे साधु-सन्तों के हृदय में स्थान बनाये। जिन सेवक भक्त शिष्यों पर सदगुरू दया करते हैं उनके सब अशुभ कर्मबंधन आदि जलकर भस्म हो जाते हैं।

शिष्य गुरू की सेवा के बदले किसी फ़ल की मन में आशा न रखे तो सदगुरू उसके सब दुखबंधन काट देते हैं। जो सदगुरू के श्रीचरणों में ध्यान लगाता है वह जीव अमरलोक जाता है। कोई योगी योगसाधना करता है जिसमें खेचरी, भूचरी, चाचरी, अगोचरी, नाद, चक्रभेदन आदि बहुत सी क्रियायें हैं। तब इन्हीं में उलझा हुआ वह योगी भी सत्यज्ञान को नहीं जान पाता, और बिना सदगुरू के वह भी भवसागर से नहीं तरता।

धर्मदास, सच्चेगुरू को ही मानना चाहिये, ऐसे साधु और गुरू में अंतर नहीं होता। परन्तु जो संसारी किस्म के गुरू हैं, वह अपने ही स्वार्थ में लगे रहते हैं। न तो वह गुरू है, न शिष्य, न साधु, और न ही आचार मानने वाला। खुद को गुरू कहने वाले ऐसे स्वार्थी जीव को तुम काल का फ़ँदा समझो, और कालनिरंजन का दूत ही जानो, उससे जीव की हानि होती है। यह स्वार्थभावना कालनिरंजन की ही पहचान है।

जो गुरू शाश्वतप्रेम के, आत्मिकप्रेम के भेद को जानता है, और सारशब्द की पहचान मार्ग जानता है, और परमपुरूष की स्थिर भक्ति कराता है, तथा सुरति को शब्द में लीन कराने की क्रिया समझाता है। ऐसे सदगुरू से मन लगाकर प्रेम करे, और दुष्टबुद्धि एवं कपट चालाकी छोङ दे तब ही वह निजघर को प्राप्त होता है, और इस भवसागर से तर के फ़िर लौटकर नहीं आता।

तीनों काल के बंधन से मुक्त सदा अविनाशी सत्यपुरूष का नाम अमृत है, अनमोल है, स्थिर है, शाश्वत सत्य से मिलाने वाला है अतः मनुष्य को चाहिये कि वह अपनी वर्तमान कौवे की चाल छोङकर हंस स्वभाव अपनाये, और

बहुत सारे पंथ जो कुमार्ग की ओर ले जाते हैं। उनमें बिलकुल भी मन न लगाये, और बहुत सारे कर्म, भ्रम के जंजाल को त्याग कर सत्य को जाने, तथा अपने शरीर को मिट्टी ही जाने, और सदगुरू के वचनों पर पूर्ण विश्वास करे।

कबीर साहब के ऐसे वचन सुनकर धर्मदास बहुत प्रसन्न हुये, और दौङकर कबीर के चरणों से लिपट गये। वे प्रेम में गदगद हो गये, और उनके खुशी से आँसू बहने लगे।

फ़िर वह बोले - साहिब, आप मुझे ज्ञान पाने के अधिकारी और अनाधिकारी जीवों के लक्षण भी कहें।

कबीर बोले - धर्मदास, जिसको तुम विनम्र देखो जिस पुरूष में ज्ञान की ललक, परमार्थ और सेवाभावना हो तथा जो मुक्ति के लिये बहुत अधीर हो। जिसके मन में दया, शील, क्षमा आदि सदगुण हों उसको नाम (हंसदीक्षा) और सत्यज्ञान का उपदेश करो। किन्तु जो दयाहीन हो सारशब्द का उपदेश न माने, और काल का पक्ष लेकर व्यर्थ वाद-विवाद तर्क-वितर्क करे, और जिसकी दृष्टि चंचल हो। उसको ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

होठों के बाहर जिसके दाँत दिखाई पङें, उसको जानो कि कालदूत वेश धरकर आया है। जिसकी आँख के मध्य तिल हो, वह काल का ही रूप है। जिसका सिर छोटा हो, परन्तु शरीर विशाल हो, उनके हृदय में अक्सर कपट होता है। उसको भी सारशब्द ज्ञान मत दो, क्योंकि वह सत्यपंथ की हानि ही करेगा।

तब धर्मदास ने कबीर साहब को श्रद्धा से दंडवत प्रणाम किया।

शरीरज्ञान परिचय

धर्मदास बोले - साहिब, मैं बङभागी हूँ, आपने मुझे ज्ञान दिया। अब मुझे शरीरनिर्णय विचार भी कहिये, इसमें कौन सा देवता कहाँ रहता है, और उसका क्या कार्य है? नाङी रोम कितने हैं, और शरीर में खून किसलिये है, तथा स्वांस कौन से मार्ग से चलती है? आँते, पित्त, फ़ेफ़ङा, और आमाशय इनके बारे में भी बताओ। शरीर में स्थिति कौन से कमल पर कितना जप होता है, और रात-दिन में कितनी स्वांस चलती है। कहाँ से शब्द उठकर आता है, तथा कहाँ जाकर वह समाता है? अगर कोई जीव झिलमिल-ज्योति को देखता है, तो मुझे उसका भी ज्ञान विवेक कहो कि उसने कौन से देवता का दर्शन पाया?

कबीर बोले - धर्मदास, अब तुम शरीर-विचार सुनो। सत्यपुरूष का नाम सबसे न्यारा और शरीर से अलग है, क्योंकि वह आदिपुरूष कृमशः स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण तथा कैवल्य शरीरों से अलग है। इसलिये उसका नाम भी अलग ही है।

पहला मूलाधारचक्र गुदास्थान है, यहाँ चारदल का कमल है। इसका देवता गणेश है, यहाँ सोलह सौ अजपा जाप है। मूलाधार के ऊपर स्वाधिष्ठानचक्र है, यह छहदल का कमल है। यहाँ ब्रहमा, सावित्री का स्थान है, यहाँ छह हजार अजपा जाप है। आठदल (पत्ते) का कमल नाभिस्थान पर है। यह विष्णु लक्ष्मी का स्थान है, यहाँ छह हजार अजपा जाप है।

इसके ऊपर हृदय स्थान पर बारह दल का कमल है, यह शिव पार्वती का स्थान है। यहाँ छह हजार अजपा जाप है। विशुद्धचक्र का स्थान कंठ (गला) है, यह सोलह दल का कमल है। इसमें सरस्वती का स्थान है, इसके लिये एक हजार अजपा जाप है। भंवरगुफ़ा दो-दल का कमल है, वहाँ मनराजा का थाना (चौकी - मुक्त होते जीव को भरमाने के लिये) है। इसके लिये भी एक हजार अजपा जाप है। इस कमल के ऊपर शून्यस्थान है, वहाँ होती झिलमिल-ज्योति को कालनिरंजन जानो। सबसे ऊपर 'सुरतिकमल' में सदगुरू का वास है, वहाँ अनन्त अजपा जाप है। धर्मदास, सबसे नीचे मूलाधारचक्र से ऊपर तक इक्कीस हजार छह सौ स्वांस दिन-रात चलती है।

(सामान्य स्वांस लेने और छोडने में चार सेकेंड का समय लगता है। इस हिसाब से चौबीस घंटे में इक्कीस हजार छह सौ स्वांस दिन-रात आती जाती है)

अब शरीर के बारे में जानो। पाँच-तत्व से बना ये (घडा, घट) कुम्भरूपी शरीर है, तथा शरीर में सात धातुयें रक्त, माँस, मेद, मज्जा, रस, शुक्र और अस्थि हैं। इनमें रस बना खून सारे शरीर में दौडता हुआ शरीर का पोषण करता है। जैसे प्रथ्वी पर असंख्य पेड-पौधे हैं वैसे ही प्रथ्वीरूपी इस शरीर पर करोडों रोम (रोंयें) होते हैं। इस शरीर की संरचना में बहत्तर कोठे हैं जहाँ बहत्तर हजार नाडियों की गाँठ बँधी हुयी है, इस तरह शरीर में धमनी और शिराप्रधान नाडियाँ हैं। बहत्तर नाडियों में नौ पुहुखा, गंधारी, कुहू, वारणी, गणेशनी, पयस्विनी, हस्तिनी, अलंवुषा, शंखिनी हैं। इन नौ में भी इडा, पिंगला, सुष्मना ये तीन प्रधान हैं। इन तीन नाडियों में भी सुष्मना खास है। इस नाडी के द्वारा ही योगी सत्ययात्रा करते हैं।

नीचे मूलाधारचक्र से लेकर ऊपर ब्रह्मरंध्र तक जितने भी कमलदल चक्र आते हैं। उनसे शब्द उठता है और उनका गुण प्रकट करता है। तब वहाँ से फ़िर उठकर वह शब्द शून्य में समा जाता है। आँत का इक्कीस हाथ होने का प्रमाण है, और आमाशय सवा हाथ अनुमान है। नभक्षेत्र का सवा हाथ प्रमाण है, और इसमें सात खिडकी दो कान, दो आँख, दो नाक छिद, एक मुँह है। इस तरह इस शरीर में स्थित प्राणवायु के रहस्य को जो योगी जान लेता है, और निरंतर ये योग करता है। परन्तु सदगुरू की भक्ति के बिना वह भी लख चौरासी में ही जाता है। हर तरह से ज्ञानयोग कर्मयोग से श्रेष्ठ है अतः इन विभिन्न योगों के चक्कर में न पड कर नाम की सहज भक्ति से अपना उद्धार करे, और शरीर में रहने वाले अत्यन्त बलवान शत्रु काम, क्रोध, मद, लोभ आदि को ज्ञान द्वारा नष्ट करके जीवन मुक्त होकर रहे।

धर्मदास, ये सब कर्मकांड मन के व्यवहार हैं अतः तुम सदगुरू के मत से ज्ञान को समझो। कालनिरंजन या मन शून्य में ज्योति दिखाता है, जिसे देखकर जीव उसे ही ईश्वर मानकर धोखे में पड जाता है। इस प्रकार ये 'मनरूपी' कालनिरंजन अनेक प्रकार के भ्रम उत्पन्न करता है।

धर्मदास, योगसाधना में मस्तक में प्राण रोकने से जो ज्योति उत्पन्न होती है, वह आकार-रहित निराकार मन ही है। मन में ही जीवों को भरमाने उन्हें पापकर्मों में विषयों में प्रवृत करने की शक्ति है उसी शक्ति से वह सब जीवों को कुचलता है, उसकी यह शक्ति तीनों लोक में फ़ैली हुयी है। इस तरह मन द्वारा भ्रमित यह मनुष्य खुद को पहचान कर असंख्य-जन्मों से धोखा खा रहा है, और ये भी नहीं सोच पाता कि कालनिरंजन के कपट से जिन तुच्छ देवी-देवताओं के आगे वह सिर झुकाता है, वे सब उस (आत्मा-मनुष्य) के ही आश्रित हैं। धर्मदास, यह सब निरंजन का जाल है। जो मनुष्य देवी- देवताओं को पूजता हुआ कल्याण की आशा करता है परन्तु सत्यनाम के बिना यह यम की फ़ाँस कभी नहीं कटेगी।

मन की कपट करामात

कबीर बोले - धर्मदास, जिस प्रकार कोई नट बंदर को नाच नचाता है, और उसे बंधन में रखता हुआ अनेक दुख देता है इसी प्रकार ये मनरूपी कालनिरंजन जीव को नचाता है, और उसे बहुत दुख देता है। यह मन जीव को भ्रमित कर पापकर्मों में प्रवृत करता है तथा सांसारिक बंधन में मजबूती से बाँधता है। मुक्ति उपदेश की तरफ़ जाते हुये किसी जीव को देखकर मन उसे रोक देता है। इसी प्रकार मनुष्य की कल्याणकारी कार्यों की इच्छा होने पर भी यह मन रोक देता है। मन की इस चाल को कोई बिरला पुरूष ही जान पाता है। यदि कहीं सत्यपुरूष का ज्ञान हो रहा हो, तो ये मन जलने लगता है, और जीव को अपनी तरफ़ मोड़कर विपरीत बहा ले जाता है।

इस शरीर के भीतर और कोई नहीं है, केवल मन और जीव ये दो ही रहते हैं। पाँच-तत्व और पाँच-तत्वों की पच्चीस प्रकृतियाँ, सत, रज, तम ये तीन गुण और दस इन्द्रियाँ ये सब मन-निरंजन के ही चेले हैं।
सत्यपुरूष का अंश जीव आकर शरीर में समाया है, और शरीर में आकर जीव अपने घर की पहचान भूल गया है। पाँच-तत्व, पच्चीस प्रकृति, तीन गुण और मन-इन्द्रियों ने मिलकर जीव को घेर लिया है। जीव को इन सबका ज्ञान नहीं है, और अपना ये भी पता नहीं कि मैं कौन हूँ? इस प्रकार से बिना परिचय के अविनाशी-जीव कालनिरंजन का दास बना हुआ है। जीव अज्ञानवश खुद को और इस बंधन को नहीं जानता।
जैसे तोता लकड़ी के नलनी यंत्र में फ़ँसकर कैद हो जाता है, यही स्थिति मनुष्य की है। जैसे शेर ने अपनी परछाईं कुँए के जल में देखी, और अपनी छाया को दूसरा शेर जानकर कूद पड़ा, और मर गया। ठीक ऐसे ही जीव काल-माया का धोखा समझ नहीं पाता, और बंधन में फ़ँसा रहता है। जैसे काँच के महल के पास गया कुत्ता दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखकर भौंकता है, और अपनी ही आवाज और प्रतिबिम्ब से धोखा खाकर दूसरा कुत्ता समझकर उसकी तरफ़ भागता है। ऐसे ही कालनिरंजन ने जीव को फ़ँसाने के लिये मायामोह का जाल बना रखा है।
कालनिरंजन और उसकी शाखाओं (कर्मचारी देवताओं आदि ने) ने जो नाम रखे हैं, वे बनावटी हैं। जो देखने-सुनने में शुद्ध, मायारहित और महान लगते हैं परबृह्म, पराशक्ति आदि आदि। परन्तु सच्चा और मोक्षदायी केवल आदिपुरूष का 'आदिनाम' ही है।

अतः धर्मदास, जीव इस काल की बनायी भूलभूलैया में पड़कर सत्यपुरूष से बेगाना हो गये, और अपना भला-बुरा भी नहीं विचार सकते। जितना भी पापकर्म और मिथ्या विषय आचरण है, ये इसी मन-निरंजन का ही है। यदि जीव इस दुष्टमन निरंजन को पहचान कर इससे अलग हो जाये, तो निश्चित ही जीव का कल्याण हो जाय। यह मैंने मन और जीव की भिन्नता तुम्हें समझाई। जो जीव सावधान सचेत होकर ज्ञानदृष्टि से मन को देखेगा, समझेगा तो वह कालनिरंजन के धोखे में नहीं आयेगा। जैसे जबतक घर का मालिक सोता रहता है तबतक चोर उसके घर में सेंध लगाकर चोरी करने की कोशिश करते रहते हैं, और उसका धन लूट ले जाते हैं।

ऐसे ही जबतक शरीररूपी घर का स्वामी ये जीव अज्ञानवश मन की चालों के प्रति सावधान नहीं रहता तबतक मनरूपी चोर उसका भक्ति और ज्ञानरूपी धन चुराता रहता है, और जीव को नीचकर्मों की ओर प्रेरित करता रहता है। परन्तु जब जीव इसकी चाल को समझकर सावधान हो जाता है तब इसकी नहीं चलती। जो जीव मन को जानने लगता है, उसकी जाग्रतकला (योगस्थिति) अनुपम होती है। जीव के लिये अज्ञान अँधकार बहुत भयंकर अँधकूप के समान है। इसलिये ये मन ही भयंकर काल है, जो जीव को बेहाल करता है।

स्त्री-पुरूष मन द्वारा ही एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं, और मन उमड़ने से ही शरीर में कामदेव जीव को

बहुत सताता है। इस प्रकार स्त्री-पुरूष विषयभोग में आसक्त हो जाते हैं। इस विषयभोग का आनन्दरस कामइन्द्री और मन ने लिया, और उसका पाप जीव के ऊपर लगा दिया। इस प्रकार पापकर्म और सब अनाचार कराने वाला ये मन होता है, और उसके फ़लस्वरूप अनेक नर्क आदि कठोर दंड जीव भोगता है।
दूसरों की निंदा करना, दूसरों का धन हड़पना, यह सब मन की फ़ाँसी है। सन्तों से वैर मानना, गुरू की निन्दा करना यह सब मन-बुद्धि का कर्म कालजाल है, जिसमें भोलाजीव फ़ँस जाता है। परस्त्री-पुरूष से कभी व्यभिचार न करे, अपने मन पर सयंम रखे।

यह मन तो अँधा है, विषय विषरूपी कर्मों को बोता है, और प्रत्येक इन्द्री को उसके विषय में प्रवृत करता है। मन जीव को उमंग देकर मनुष्य से तरह तरह की जीवहत्या कराता है, और फ़िर जीव से नर्क भुगतवाता है। यह मन जीव को अनेकानेक कामनाओं की पूर्ति का लालच देकर तीर्थ, व्रत, तुच्छ देवी-देवताओं की जड़-मूर्तियों की सेवा-पूजा में लगाकर धोखे में डालता है। लोगों को द्वारिकापुरी में यह मन दाग (छाप) लगवाता है। मुक्ति आदि की झूठी आशा देकर मन ही जीव को दाग देकर बिगाड़ता है। अपने पुण्यकर्म से यदि किसी का राजा का जन्म होता है, तो पुण्यफ़ल भोग लेने पर वही नर्क भुगतता है, और राजा जीवन में विषयविकारी होने से नर्क भुगतने के बाद फ़िर उसका सांड का जन्म होता है, और वह बहुत गायों का पति होता है।

पाप-पुण्य दो अलग-अलग प्रकार के कर्म होते हैं। उनमें पाप से नर्क और पुण्य से स्वर्ग प्राप्त होता है। पुण्यकर्म क्षीण हो जाने से फ़िर नर्क भुगतना होता है, ऐसा विधान है अतः कामनावश किये गये पुण्य का यह कर्मयोग भी मन का जाल है। निष्काम भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है, जिससे जीव का सब दुख-द्वंद मिट जाता है।

धर्मदास, इस मन की कपट-करामात कहाँ तक कहूँ। ब्रहमा, विष्णु, महेश तीनों प्रधान देवता शेषनाग तथा तैतीस करोड़ देवता सब इसके फ़ँदे में फ़ँसे, और हार कर रहे मन को वश में न कर सके। सदगुरू के बिना कोई मन को वश में नहीं कर पाता। सभी मन-माया के बनावटी जाल में फ़ँसे पड़े हैं।

कपटी कालनिरंजन का चरित्र

कबीर बोले - धर्मदास, अब इस कपटी कालनिरंजन का चरित्र सुनो, किस प्रकार वह जीवों की छलबुद्धि कर अपने जाल में फ़ँसाता है। इसने कृष्ण अवतार धर कर गीता की कथा कही परन्तु अज्ञानी जीव इसके चाल रहस्य को नहीं समझ पाता। अर्जुन श्रीकृष्ण का सच्चा सेवक था, और श्रीकृष्ण की भक्ति में लगन लगाये रहता था। श्रीकृष्ण ने उसे सब सूक्ष्मज्ञान कहा। सांसारिक विषयों से लगाव और सांसारिक विषयों से परे आत्म, मोक्ष सब कुछ सुनाया। परन्तु बाद में काल अनुसार उसे मोक्षमार्ग से हटाकर सांसारिक कर्म-कर्तव्य में लगने को प्रेरित किया जिसके परिणामस्वरूप भयंकर महाभारत युद्ध हुआ।

श्रीकृष्ण ने गीता के ज्ञान उपदेश में पहले दया, क्षमा आदि गुण उपदेश के बारे में बताया, और ज्ञान-विज्ञान कर्मयोग आदि कल्याण देने वाले उपदेशों का वर्णन किया। जबकि अर्जुन सत्यभक्ति में लगन लगाये था तथा वह श्रीकृष्ण को बहुत मानता था। पहले श्रीकृष्ण ने अर्जुन को मुक्ति की आशा दी परन्तु बाद में उसे नर्क में डाल दिया। कल्याणदायक ज्ञानयोग का त्याग कराकर उसे सांसारिक कर्म-कर्तव्य की ओर घुमा दिया जिससे कर्म के वश हुये अर्जुन ने बाद में बहुत दुख पाया। मीठा अमृत दिखाकर उसका लालच देकर धोखे से विष समान दुख दे दिया।

इस प्रकार काल जीवों को बहला-फुसला कर सन्तों की छवि बिगाड़ता है, और उन्हें मुक्ति से दूर रखता है। जीवों में सन्तों के प्रति अविश्वास और संदेह उत्पन्न करता है। इस कालनिरंजन की छलबुद्धि कहाँ-कहाँ तक गिनाऊँ। उसे कोई कोई विवेकी सन्त ही पहचानता है। जब कोई ज्ञानमार्ग में पक्का रहता है तभी उसे सत्यमार्ग सूझता है। तब वह यम के छल-कपट को समझता है, और उसे पहचानता हुआ उससे अलग हो जाता है। सदगुरू की शरण में जाने पर यम का नाश हो जाता है, तथा अटल अक्षय-सुख प्राप्त होता है।

सत्यपंथ की डोर

धर्मदास बोले - प्रभु, इस कालनिरंजन का चरित्र मैंने समझ लिया। अब आप 'सत्यपंथ की डोरी' कहो, जिसको पकड़ कर जीव यमनिरंजन से अलग हो जाता है।

कबीर बोले - धर्मदास, मैं तुमको सत्यपुरूष की डोरी की पहचान कराता हूँ। सत्यपुरूष की शक्ति को जब यह जीव जान लेता है तब काल कसाई उसका रास्ता नहीं रोक पाता। सत्यपुरूष की शक्ति उनके एक ही नाल से उत्पन्न सोलह सुत हैं, उन शक्तियों के साथ ही जीव सत्यलोक को जाता है। बिना शक्ति के पंथ नहीं चल सकता। शक्तिहीन जीव तो भवसागर में ही उलझा रहता है। ये शक्तियाँ सदगुणों के रूप में बतायी गयी हैं। ज्ञान, विवेक, सत्य, संतोष, प्रेमभाव, धीरज, मौन, दया, क्षमा, शील, निहकर्म, त्याग, वैराग्य, शांति, निजधर्म।

दूसरों का दुख दूर करने के लिये ही तो करूणा की जाती है। परन्तु अपने आप भी करूणा करके अपने जीव का उद्धार करे, और सबको मित्र समान समझ कर अपने मन में धारण करे। इन शक्तिस्वरूप सदगुणों को ही धारण कर जीव सत्यलोक में विश्राम पाता है अतः मनुष्य जिस भी स्थान पर रहे अच्छी तरह से समझ-बूझ कर सत्यरास्ते पर चले। और मोह, ममता, काम, क्रोध आदि दुर्गुणों पर नियंत्रण रखे। इस तरह इस डोर के साथ जो सत्यनाम को पकड़ता है, वह जीव सत्यलोक जाता है।

धर्मदास बोले - प्रभु, आप मुझे पंथ का वर्णन करो, और पंथ के अंतर्गत विरक्ति और ग्रहस्थ की रहनी पर भी प्रकाश डालो। कौन सी रहनी से वैरागी वैराग्य करे, और कौन सी रहनी से ग्रहस्थ आपको प्राप्त करे।

कबीर साहब बोले - धर्मदास, अब मैं वैरागी के लिये आचरण बताता हूँ। वह पहले अभक्ष्य पदार्थ माँस, मदिरा आदि का त्याग करे, तभी हंस कहायेगा। वैरागीसन्त सत्यपुरूष की अनन्यभक्ति अपने ह्रदय में धारण करे। किसी से भी द्वेष और वैर न करे ऐसे पापकर्मों की तरफ़ देखे भी नहीं। सब जीवों के प्रति ह्रदय में दयाभाव रखे, मन-वचन कर्म से भी किसी जीव को न मारे। सत्यज्ञान का उपदेश और नाम ले, जो मुक्ति की निशानी है। जिससे पापकर्म अज्ञान तथा अहंकार का समूल नाश हो जायेगा। वैरागी ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्णरूप से पालन करे। कामभावना की दृष्टि से स्त्री को स्पर्श न करे, तथा वीर्य को नष्ट न करे। काम, क्रोध आदि विषय और छल-कपट को ह्रदय से पूर्णतया धो दे, और एकमन, एकचित्त होकर नाम का सुमरण करे।

धर्मदास, अब ग्रहस्थ की भक्ति सुनो, जिसको धारण करने से ग्रहस्थ कालफ़ांस में नहीं पडेगा। वह कागदशा (कौवा स्वभाव) पापकर्म, दुर्गुण और नीच स्वभाव से पूरी तरह दूर रहे, और ह्रदय में सभी जीवों के प्रति दयाभाव बनाये

रखे। मछली, किसी भी पशु का माँस, अंडे न खाये, और न ही शराब पिये। इनको खाना-पीना तो दूर इनके पास भी न जाये, क्योंकि ये सब अभक्ष्य-पदार्थ हैं। वनस्पति अंकुर से उत्पन्न अनाज, फ़ल, शाक सब्जी आदि का आहार करे। सदगुरू से नाम ले, जो मुक्ति की पहचान है, तब काल कसाई उसको रोक नहीं पाता है।

जो ग्रहस्थ जीव ऐसा नहीं करता, वह कहीं भी नहीं बचता। वह घोर दुख के अग्निकुन्ड में जल-जल कर नाचता है, और पागल हुआ सा इधर-उधर को भटकता ही है। उसे अनेकानेक कष्ट होते हैं, और वह जन्म-जन्म बारबार कठोर नर्क में जाता है। वह करोडों जन्म जहरीले साँप के पाता है, तथा अपनी ही विष ज्वाला का दुख सहता हुआ यूँ ही जन्म गँवाता है। वह विष्ठा (मल, टट्टी) में कीडा कीट का शरीर पाता है, और इस प्रकार चौरासी की योनियों के करोडों जन्म तक नर्क में पडा रहता है।

और तुमसे जीव के घोर दुख को क्या कहूँ। मनुष्य चाहे करोडों योग आराधना करे, किन्तु बिना सदगुरू के जीव को हानि ही होती है। सदगुरू मन, बुद्धि, पहुँच के परे का अगमज्ञान देने वाले हैं, जिसकी जानकारी वेद भी नहीं बता सकते। वेद इसका-उसका यानी कर्मयोग, उपासना और ब्रह्म का ही वर्णन करता है। वेद सत्यपुरूष का भेद नहीं जानता। अतः करोडों में कोई ऐसा विवेकी संत होता है, जो मेरी वाणी को पहचान कर ग्रहण करता है। कालनिरंजन ने खानी, वाणी के बंधन में सबको फ़ँसाया हुआ है। मंदबुद्धि अल्पज्ञ जीव उस चाल को नहीं पहचानता, और अपने घर आनन्दधाम सत्यलोक नहीं पहुँच पाता तथा जन्म-मरण और नर्क के भयानक कष्टों में ही फ़ँसा रहता है।

कौआ और कोयल से भी सीखो

कबीर बोले - धर्मदास, कोयल के बच्चे का स्वभाव सुनो, और उसके गुणों को जानकर विचार करो। कोयल मन से चतुर तथा मीठी वाणी बोलने वाली होती है जबकि उसका वैरी कौवा पाप की खान होता है। कोयल कौवे के घर (घोंसले) में अपना अण्डा रख देती है। विपरीत गुण वाले दुष्ट मित्र कौवे के प्रति कोयल ने अपना मन एक समान किया। तब सखा मित्र सहायक समझ कर कौवे ने उस अण्डे को पाला और वह कालबुद्धि कागा (कौवा) उस अण्डे की रक्षा करता रहा।

समय के साथ कोयल का अण्डा बडकर पक्का हुआ और समय आने पर फ़ूट गया तब उससे बच्चा निकला। कुछ दिन बीत जाने पर कोयल के बच्चे की आँखे ठीक से खुल गयी, और वह समझदार होकर जानने समझने लगा फ़िर कुछ ही दिनों में उसके पँख भी मजबूत हो गये। तब कोयल समय-समय पर आ आकर उसको शब्द सुनाने लगी। अपना निजशब्द सुनते ही कोयल का बच्चा जाग गया, यानी सचेत हो गया, और सच का बोध होते ही उसे अपने वास्तविक कुल का वचन वाणी प्यारी लगी।

फ़िर जब भी कागा कोयल के बच्चे को दाना खिलाने घुमाने ले जाये, तब-तब कोयल अपने उस बच्चे को वह मीठा मनोहर शब्द सुनाये। कोयल के बच्चे में जब उस शब्द द्वारा अपना अंश अंकुरित हुआ, यानी उसे अपनी असलीपहचान का बोध हुआ, तो उस बच्चे का ह्रदय कौवे की ओर से हट गया, और एक दिन कौवे को अंगूठा दिखा कर वह कोयल का बच्चा उससे पराया होकर उड चला।

कोयल का बच्चा अपनी वाणी बोलता हुआ चला, और तब घबरा कर उसके पीछे-पीछे कागा व्याकुल बेहाल होकर

दौड़ा। उसके पीछे-पीछे भागता हुआ कागा थक गया परन्तु उसे नहीं पा सका, फ़िर वह बेहोश हो गया, और बाद में होश आने पर निराश होकर अपने घर लौट आया। कोयल का बच्चा जाकर अपने परिवार से मिलकर सुखी हो गया, और निराश कागा झक मारकर रह गया।

धर्मदास, जिस प्रकार कोयल का बच्चा होता है कि वह कौवे के पास रहकर भी अपना शब्द सुनते ही उसका साथ छोड़कर अपने परिवार से मिल जाता है। इसी विधि से जब कोई भी समझदार जीव मनुष्य अपने निजनाम और निजआत्मा की पहचान के लिये सचेत हो जाता है, तो वह मुझ (सदगुरू) से स्वयं ही मिल जाता है, और अपने असली घर-परिवार सत्यलोक में पहुँच जाता है, तब मैं उसके एक सौ एक वंश तार देता हूँ।

कोयलसुत जस शूरा होई, यहविधि धाय मिले मोहि कोई।
निजघर सुरत करे जो हंसा, तारों ताहि एकोत्तर वंशा।

धर्मदास, इसी तरह कोयल के बच्चे की भांति कोई शूरवीर मनुष्य कालनिरंजन की असलियत को जानकर सदगुरू के प्रति शब्द (नामउपदेश) के लिये मेरी तरफ़ दौड़ता है, और निजघर सत्यलोक की तरफ़ अपनी सुरति (पूरी एकाग्रता) रखता है। मैं उसके एक सौ एक वंश तार देता हूँ।

कबीर बोले - धर्मदास, कौवे की नीच चालचलन नीचबुद्धि को छोड़कर हंस की रहनी, सत्यआचरण, सदगुण, प्रेम, शील स्वभाव, शुभकार्य जैसे उत्तम लक्षणों को अपनाने से मनुष्य जीव सत्यलोक जाता है।
जिस प्रकार कागा की कर्कश वाणी कांव-कांव किसी को अच्छी नहीं लगती परन्तु कोयल की मधुर वाणी कुहुकुहु सबके मन को भाती है। इसी प्रकार कोयल की तरह हंसजीव विचारपूर्वक उत्तमवाणी बोले।
जो कोई अग्नि की तरह जलता हुआ क्रोध में भरकर भी सामने आये तो हंसजीव को शीतल जल के समान उसकी तपन बुझानी चाहिये। ज्ञान-अज्ञान की यही सही पहचान है। जो अज्ञानी होता है, वही कपटी उग्र तथा दुष्टबुधि वाला होता है।

गुरू का ज्ञानी शिष्य शीतल और प्रेमभाव से पूर्ण होता है उसमें सत्य, विवेक, संतोष आदि सदगुण समाये होते हैं। ज्ञानी वही है जो झूठ, पाप, अनाचार, दुष्टता, कपट आदि दुर्गुणों से युक्त दुष्टबुद्धि को नष्ट कर दे, और कालनिरंजन रूपी मन को पहचान कर उसे भुला दे। उसके कहने में न आये। जो ज्ञानी होकर कटुवाणी बोलता है, वह ज्ञानी अज्ञान ही बताता है, उसे अज्ञानी ही समझना चाहिये। जो मनुष्य शूरवीर की तरह धोती खोंस कर मैदान में लड़ने के लिये तैयार होता है, और युद्धभूमि में आमने सामने जाकर मरता है तब उसका बहुत यश होता है, और वह सच्चावीर कहलाता है। इसी प्रकार जीवन में अज्ञान से उत्पन्न समस्त पाप दुर्गुण और बुराईयों को परास्त करके जो ज्ञानविज्ञान उत्पन्न होता है, उसी को ज्ञान कहते हैं।

मूर्ख अज्ञानी के ह्रदय में शुभ सतकर्म नहीं सूझता, और वह सदगुरू का सारशब्द और सदगुरू के महत्व को नहीं समझता। मूर्ख इंसान से अधिकतर कोई कुछ कहता नहीं है। यदि किसी नेत्रहीन का पैर यदि विष्ठा (मल) पर पड़ जाये तो उसकी हँसी कोई नहीं करता लेकिन यदि आँख होते हुये भी किसी का पैर विष्ठा से सन जाये, तो सभी लोग उसको ही दोष देते हैं। धर्मदास, यही ज्ञान और अज्ञान है। ज्ञान और अज्ञान विपरीत स्वभाव वाले ही होते हैं अतः ज्ञानीपुरूष हमेशा सदगुरू का ध्यान करे, और सदगुरू के सत्यशब्द को समझे। सबके अन्दर सदगुरू का वास है पर वह कहीं गुप्त तो कहीं प्रकट है। इसलिये सबको अपना मानकर जैसा मैं अविनाशी आत्मा हूँ वैसे ही सभी जीवात्माओं को समझे, और ऐसा समझ कर समान भाव से सबसे नमन करे, और ऐसी गुरूभक्ति की निशानी

लेकर रहे।

रंग कच्चा होने के कारण, इस देह को कभी भी नाशवान होने वाली जानकर भक्त प्रहलाद की तरह अपने सत्यसंकल्प में दृढ़ मजबूत होकर रहे। यद्यपि उसके पिता हिरण्यकश्यप ने उसको बहुत कष्ट दिये लेकिन फ़िर भी प्रहलाद ने अडिग होकर हरिगुण वाली प्रभुभक्ति को ही स्वीकार किया। ऐसी ही प्रहलाद कैसी पक्कीभक्ति करता हुआ सदगुरू से लगन लगाये रहे, और चौरासी में डालने वाली मोहमाया को त्याग कर भक्तिसाधना करे। तब वह अनमोल हुआ हंसजीव अमरलोक में निवास पाता है, और अटल होकर स्थिर होकर जन्म-मरण के आवागमन से मुक्त हो जाता है।

परमार्थ के उपदेश

कबीर साहब बोले - धर्मदास, अब मैं तुमसे परमार्थ वर्णन करता हूँ। ज्ञान को प्राप्त हुआ, ज्ञान के शरणागति हुआ कोई जीव समस्त अज्ञान और कालजाल को छोङे तथा लगन लगाकर सत्यनाम का सुमरन करे। असत्य को छोङकर सत्य की चाल चले, और मन लगाकर परमार्थ मार्ग को अपनाये।

धर्मदास, एक गाय को परमार्थ गुणों की खान जानो। गाय की चाल और गुणों को समझो। गाय खेत, बाग आदि में घास चरती है, जल पीती है, और अन्त में दूध देती है। उसके दूध, घी से देवता और मनुष्य दोनों ही तृप्त होते हैं। गाय के बच्चे दूसरों का पालन करने वाले होते हैं। उसका गोबर भी मनुष्य के बहुत काम आता है। परन्तु पापकर्म करने वाला मनुष्य अपना जन्म यूँ ही गंवाता है। बाद में आयु पूरी होने पर गाय का शरीर नष्ट हो जाता है, तब राक्षस के समान मनुष्य उसका शरीर का मांस लेकर खाते हैं। मरने पर भी उसके शरीर का चमढ़ा मनुष्य के लिये बहुत सुख देने वाला होता है। भाई, जन्म से लेकर मृत्यु तक गाय के शरीर में इतने गुण होते हैं। इसलिये गाय के समान गुण वाला होने का यह वाणी उपदेश सज्जन पुरूष गृहण करे तो कालनिरंजन जीव की कभी हानि नहीं कर सकता। मनुष्यशरीर पाकर जिसकी बुद्धि ऐसी शुद्ध हो, और उसे सदगुरू मिले तो वह हमेशा को अमर हो जाये।

धर्मदास, परमार्थ की वाणी, परमार्थ के उपदेश सुनने से कभी हानि नहीं होती इसलिये सज्जन परमार्थ का सहारा, आधार लेकर भवसागर से पार हो। दुर्लभ मनुष्यजीवन के रहते मनुष्य सारशब्द के उपदेश का परिचय और ज्ञान प्राप्त करे फ़िर परमार्थ पद को प्राप्त हो तो वह सत्यलोक को जाये। अहंकार को मिटा दे, और निष्काम-सेवा की भावना ह्रदय में लाये।

जो अपने कुल, बल, धन, ज्ञान आदि का अहंकार रखता है, वह सदा दुख ही पाता है। यह मनुष्य ऐसा चतुर बुद्धिमान बनता है कि सदगुण और शुभकर्म होने पर कहता है कि मैंने ऐसा किया है, और उसका पूरा श्रेय अपने ऊपर लेता है, और अवगुण द्वारा उल्टा विपरीत परिणाम हो जाने पर कहता है कि भगवान ने ऐसा कर दिया।

यह नर अस चातुर बुधिमाना, गुण शुभकर्म कहे हम ठाना।
ऊँचक्रिया आपन सिर लीन्हा, औगण को बोले हरि कीन्हा।

तब ऐसा सोचने से उसके शुभकर्मों का नाश हो जाता है। धर्मदास, सब आशाओं को छोङकर तुम निराश (उदास,

विरक्त, वैरागी भाव) भाव जीवन में अपनाओ, और केवल एक सत्यनाम कमाई की ही आशा करो, और अपने किये शुभकर्म को किसी को बताओ नहीं। सभी देवी-देवताओं भगवान से ऊँचा सर्वोपरि गुरूपद है उसमें सदा लगन लगाये रहो। जैसे जल में अभिन्नरूप से मछली घूमती है वैसे ही सदगुरू के श्रीचरणों में मग्न रहे। सदगुरू द्वारा दिये शब्दनाम में सदा मन लगाता हुआ उसका सुमरन करे। जैसे मछली कभी जल को नहीं भूलती, और उससे दूर होकर तड़पने लगती है ऐसे ही चतुरशिष्य गुरू से उपदेश कर उन्हें भूले नहीं। सत्यपुरूष के सत्यनाम का प्रभाव ऐसा है कि हंसजीव फ़िर से संसार में नहीं आता।

तुम कछुए के बच्चे की कला गुण समझो। कछवी जल से बाहर आकर रेत मिट्टी में गढ़ढा खोदकर अण्डे देती है, और अण्डों को मिट्टी से ढककर फ़िर पानी में चले जाती है। परन्तु पानी में रहते हुये भी कछवी का ध्यान निरन्तर अण्डों की ओर ही लगा रहता है वह ध्यान से ही अण्डों को सेती है। समय पूरा होने पर अण्डे पुष्ट होते हैं, और उनमें से बच्चे बाहर निकल आते हैं। तब उनकी माँ कछवी उन बच्चों को लेने पानी से बाहर नहीं आती। बच्चे स्वयं चलकर पानी में चले जाते हैं, और अपने परिवार से मिल जाते हैं।

धर्मदास, जैसे कछुये के बच्चे अपने स्वभाव से अपने परिवार से जाकर मिल जाते हैं। वैसे ही मेरे हंसजीव अपने निजस्वभाव से अपने घर सत्यलोक की तरफ़ दौडें। उनको सत्यलोक जाते देखकर कालनिरंजन के यमदूत बलहीन हो जायेंगे, तथा वे उनके पास नहीं जायेंगे। वे हंसजीव निर्भय, निडर होकर गरजते और प्रसन्न होते हुये नाम का सुमरन करते हुये आनन्दपूर्वक अपने घर जाते हैं, और यमदूत निराश होकर झक मारकर रह जाते हैं।

सत्यलोक आनन्द का धाम अनमोल और अनुपम है वहाँ जाकर हंस परमसुख भोगते हैं। हंस से हंस मिलकर आपस में क्रीडा करते हैं, और सत्यपुरूष का दर्शन पाते हैं। जैसे भंवरा कमल पर बसता है, वैसे ही अपने मन को सदगुरू के श्रीचरणों में बसाओ तब सदा अचल सत्यलोक मिलता है। अविनाशी शब्द और सुरति का मेल करो। यह बूँद और सागर के मिलने के खेल जैसा है। इसी प्रकार जीव सत्यनाम से मिलकर उसी जैसा सत्यस्वरूप हो जाता है।

अनलपक्षी का रहस्य

कबीर साहब बोले - गुरू की महान कृपा से मनुष्य साधु कहलाता है। संसार से विरक्त मनुष्य के लिये गुरूकृपा से बढ़कर कुछ भी नहीं है फ़िर ऐसा साधु अनलपक्षी के समान होकर सत्यलोक को जाता है। धर्मदास, तुम अनलपक्षी के रहस्य उपदेश को सुनो। अनलपक्षी निरन्तर आकाश में ही विचरण करता रहता है, और उसका अण्डे से उत्पन्न बच्चा भी स्वतः जन्म लेकर वापस अपने घर को लौट जाता है। प्रथ्वी पर बिलकुल नहीं उतरता। अनलपक्षी जो सदैव आकाश में ही रहता है, और केवल दिन-रात पवन यानी हवा की ही आशा करता है। अनलपक्षी की रतिक्रिया या मैथुन केवल दृष्टि से होता है, यानी वे जब एक-दूसरे से मिलते हैं, तो प्रेमपूर्वक एक दूसरे को रतिभावना की गहनदृष्टि से देखते हैं। उनकी इस रतिक्रिया विधि से मादापक्षी को गर्भ ठहर जाता है।

फ़िर कुछ समय बाद मादा अनलपक्षी अण्डा देती है पर उनके निरन्तर उड़ने के कारण अण्डा ठहरने का कोई आधार तो होता नहीं। वहाँ तो बस केवल निराधार शून्य ही शून्य है। तब आधारहीन होने के कारण अण्डा धरती की ओर गिरने लगता है, और नीचे रास्ते में आते-आते ही पूरी तरह पककर तैयार हो जाता है, और रास्ते में ही अण्डा फ़ूटकर शिशु बाहर निकल आता है, और नीचे गिरते-गिरते ही रास्ते में अनलपक्षी आँखे खोल लेता है, तथा

कुछ ही देर में उसके पंख उड़ने लायक हो जाते हैं।

नीचे गिरते हुये जब वह प्रथ्वी के निकट आता है, तब उसे स्वतः पता लग जाता है कि यह प्रथ्वी मेरे रहने का स्थान नहीं है। तब वह अनलपक्षी अपनी सुरति के सहारे वापस अंतरिक्ष की ओर लौटने लगता है जहाँ उसके माता-पिता का निवास है। अनलपक्षी कभी अपने बच्चे को लेने प्रथ्वी की ओर नहीं आते बल्कि बच्चा स्वयं ही पहचान लेता है कि यह प्रथ्वी मेरा घर नहीं है, और वापस पलटकर अपने असलीघर की ओर चला जाता है।

धर्मदास, संसार में बहुत से पक्षी रहते हैं परन्तु वे अनल पक्षी के समान गुणवान नहीं होते। ऐसे ही कुछ ही बिरले जीव है जो सदगुरू के ज्ञानअमृत को पहचानते हैं।

निर्धनियाँ सब संसार है, धनवन्ता नहिं कोय।
धनवन्ता ताही कहो, जा ते नाम रतन धन होय।

धर्मदास, इसी अनलपक्षी की तरह जो जीव ज्ञानयुक्त होकर होश में आ जाता है, तो वह इस काल कल्पनालोक को पार करके सत्यलोक मुक्तिधाम में चला जाता है। जो मनुष्य जीव इस संसार के सभी आधारों को त्याग कर एक सदगुरू का आधार और उनके नाम से विश्वासपूर्वक लगन लगाये रहता है, और सब प्रकार का अभिमान त्याग कर रात-दिन गुरूचरणों के अधीन रहता हुआ दासभाव से उनकी सेवा में लगा रहता है तथा धन, घर और परिवार आदि का मोह नहीं करता।

पुत्र, स्त्री तथा समस्त विषयों को संसार का ही सम्बन्ध मानकर गुरूचरणों को ह्रदय से पकड़े रहता है ताकि चाहकर भी अलग न हो। इस प्रकार जो मनुष्य, साधु, संत, गुरूभक्ति के आचरण में लीन रहता है। सदगुरू की कृपा से उसके जन्म-मरण रूपी अत्यन्त दुखदायी कष्ट का नाश हो जाता है, और वह साधु सत्यलोक को प्राप्त होता है। साधक या भक्तमनुष्य मन-वचन, कर्म से पवित्र होकर सदगुरू का ध्यान करे, और सदगुरू की आज्ञानुसार सावधान होकर चले। तब सदगुरू उसे इस जड़देह से परे, नामविदेह जो शाश्वतसत्य है उसका साक्षात्कार करा के सहजमुक्ति प्रदान करते हैं।

धर्मदास यह कठिन कहानी

कबीर साहब बोले - सत्यज्ञान बल से सदगुरू काल पर विजय प्राप्त कर अपनी शरण में आये हंसजीव को सत्यलोक ले जाते हैं जहाँ हंसजीव मनुष्य सत्यपुरूष के दर्शन पाता है, और अतिआनन्द प्राप्त करता है। फ़िर वह वहाँ से लौटकर कभी भी इस कष्टदायक दुखदायी संसार में वापस नहीं आता, यानी उसका मोक्ष हो जाता है।
धर्मदास, मेरे वचन उपदेश को भली प्रकार से ग्रहण करो। जिज्ञासु इंसान को सत्यलोक जाने के लिये सत्य के मार्ग पर ही चलना चाहिये। जैसे शूरवीर योद्धा एक बार युद्ध के मैदान में घुसकर पीछे मुढ़कर नहीं देखता बल्कि निर्भय होकर आगे बढ़ जाता है।

ठीक वैसे ही कल्याण की इच्छा रखने वाले जिज्ञासु साधक को भी सत्य की राह पर चलने के बाद पीछे नहीं हटना चाहिये। अपने पति के साथ सती होने वाली नारी, और युद्धभूमि में सिर कटाने वाले वीर के महान आदर्श को

देख-समझ कर जिस प्रकार मनुष्य दया, संतोष, धैर्य, क्षमा, वैराग, विवेक आदि सदगुणों को ग्रहण कर अपने जीवन में आगे बढ़ते हैं। उसी अनुसार दृढ़संकल्प के साथ सत्य सन्तमत स्वीकार करके जीवन की राह में आगे बढ़ना चाहिये। जीवित रहते हुये भी मृतकभाव अर्थात मान, अपमान, हानि, लाभ, मोहमाया से रहित होकर सत्यगुरू के बताये सत्यज्ञान से इस घोर काल कष्ट पीड़ा का निवारण करना चाहिये। धर्मदास, लाखों-करोड़ों में कोई एक बिरला मनुष्य ही ऐसा होता है जो सती, शूरवीर और सन्त के बताये हुये उदाहरण के अनुसार आचरण करता है, और तब उसे परमात्मा के दर्शन साक्षात्कार प्राप्त होता है।

धर्मदास बोले - साहिब, मुझे मृतकभाव क्या होता है? इसे पूर्णरूप से स्पष्ट बताने की कृपा करें।

कबीर बोले - धर्मदास, जीवित रहते हुये, जीवन में मृतकदशा की कहानी बहुत ही कठिन है, इस सदगुरू के सत्यज्ञान से कोई बिरला ही जान सकता है। सदगुरू के उपदेश से ही यह जाना जाता है।

धर्मदास यह कठिन कहानी, गुरूमत ते कोई बिरले जानी।

जीवन में मृतकभाव को प्राप्त हुआ सच्चा मनुष्य अपने परमलक्ष्य मोक्ष को ही खोजता है। वह सदगुरू के शब्दविचार को अच्छी तरह से प्राप्त करके उनके द्वारा बताये सत्यमार्ग का अनुसरण करता है। उदाहरणस्वरूप जैसे भ्रंगी (पंखवाला चींटा, जो दीवाल, खिड़की आदि पर मिट्टी का घर बनाता है) किसी मामूली से कीट के पास जाकर उसे अपना तेज शब्द घूँघूँघूँ सुनाता है तब वह कीट उसके गुरूज्ञान रूपी शब्दउपदेश को ग्रहण करता है। गुंजार करता हुआ भ्रंगी अपने ही तेज शब्द स्वर की गुंजार सुना-सुनाकर कीट को प्रथ्वी पर डाल देता है।

और जो कीट उस भ्रंगीशब्द को धारण करे तब भ्रंगी उसे अपने घर ले जाता है, तथा गुंजार-गुंजार कर उसे अपना 'स्वाति शब्द' सुनाकर उसके शरीर को अपने समान बना लेता है। भ्रंगी के महान शब्दरूपी स्वर-गुंजार को यदि कीट अच्छी तरह से स्वीकार कर ले तो वह मामूली कीट से भ्रंगी के समान शक्तिशाली हो जाता है। फ़िर दोनों में कोई अंतर नहीं रहता समान हो जाता है।

असंख्य झींगुर कीटों में से कोई-कोई बिरला कीट ही उपयुक्त और अनुकूल सुख प्रदान कराने वाला होता है जो भ्रंगी के 'प्रथमशब्द' गुंजार को ह्रदय से स्वीकारता है। अन्यथा कोई दूसरे, और तीसरे शब्द को ही शब्द स्वर मान कर स्वीकार कर लेता है। तन-मन से रहित भ्रंगी के उस महान शब्दरूपी गुंजार को स्वीकार करने में ही झींगुरकीट अपना भला मानते हैं। भ्रंगी के शब्द स्वर-गुंजार को जो कीट स्वीकार नहीं करता तो फ़िर वह कीटयोनि के आश्रय में ही पड़ा रहता है, यानी वह मामूली कीट से शक्तिशाली भ्रंगी नहीं बन सकता। धर्मदास, यह मामूली कीट का भ्रंगी में बदलने का अदभुत रहस्य है जो कि महान शिक्षा प्रदान करने वाला है।

इसी प्रकार जड़बुद्धि शिष्य जो सदगुरू के उपदेश को ह्रदय से स्वीकार करके ग्रहण करता है। उससे वह विषयविकारों से मुक्त होकर अज्ञानरूपी बंधनों से मुक्त होकर कल्याणदायी मोक्ष को प्राप्त होता है।

धर्मदास, भ्रंगीभाव का महत्व और श्रेष्ठता को जानो। भ्रंगी की तरह यदि कोई मनुष्य निश्चयपूर्ण बुद्धि से गुरू के उपदेश को स्वीकार करे तो गुरू उसे अपने समान ही बना लेते हैं। जिसके ह्रदय में गुरू के अलावा दूसरा कोई भाव नहीं होता, और वह सदगुरू को समर्पित होता है, वह मोक्ष को प्राप्त होता है। इस तरह वह नीचयोनि में बसने वाले कौवे से बदलकर उत्तमयोनि को प्राप्त हो हंस कहलाता है।

साधु का मार्ग बहुत कठिन है

कबीर साहब बोले - इस मनुष्य को कौवे की चाल, स्वभाव (जो साधारण मनुष्य की होती है) आदि दुर्गुणों को त्यागकर हंस स्वभाव को अपनाना चाहिये। सदगुरू के शब्दउपदेश को ग्रहण कर मन-वचन, वाणी, कर्म से सदाचार आदि सदगुणों से हंस के समान होना चाहिये। धर्मदास, जीवित रहते हुये यह मृतकस्वभाव का अनुपमज्ञान तुम ध्यान से सुनो। इसे ग्रहण करके ही कोई बिरला मनुष्य जीव ही परमात्मा की कृपा को प्राप्त कर साधनामार्ग पर चल सकता है। तुम मुझसे उस मृतकभाव का गहन रहस्य सुनो।

शिष्य मृतकभाव होकर सत्यज्ञान का उपदेश करने वाले सदगुरू के श्रीचरणों की पूरे भाव से सेवा करे। मृतकभाव को प्राप्त होने वाला कल्याण की इच्छा रखने वाला जिज्ञासु अपने ह्रदय में क्षमा, दया, प्रेम आदि गुणों को अच्छी प्रकार से ग्रहण करे, और जीवन में इन गुणों के व्रत नियम का निर्वाह करते हुये स्वयं को संसार के इस आवागमन के चक्र से मुक्त करे।

जैसे प्रथ्वी को तोङा, खोदा जाने पर भी वह विचलित नहीं होती, क्रोधित नहीं होती बल्कि और अधिक फ़ल, फ़ूल, अन्न आदि प्रदान करती है। अपने-अपने स्वभाव के अनुसार कोई मनुष्य चन्दन के समान प्रथ्वी पर फ़ूल, फ़ुलवारी आदि लगाता हुआ सुन्दर बनाता है तो कोई विष्ठा, मल आदि डालकर गन्दा करता है। कोई-कोई उस पर कृषि, खेती आदि करने के लिये जुताई-खुदाई आदि करता है। लेकिन प्रथ्वी उससे कभी विचलित न होकर शांतभाव से सभी दुख सहन करती हुयी सभी के गुण-अवगुण को समान मानती है, और इस तरह के कष्ट को और अच्छा मानते हुये अच्छी फ़सल आदि देती है।

धर्मदास, अब और भी मृतकभाव सुनो, ये अत्यन्त दुरूह कठिन बात है। मृतकभाव में स्थित संत गन्ने की भांति होता है। जैसे किसान गन्ने को पहले काट, छाँटकर खेत में बोकर उगाता है। फ़िर नये सिरे से पैदा हुआ गन्ना किसान के हाथ में पङकर पोरी-पोरी से छिलकर स्वयं को कटवाता है, ऐसे ही मृतकभाव का संत सभी दुख सहन करता है।

फ़िर वह कटा-छिला हुआ गन्ना अपने आपको कोल्हू में पिरवाता है। जिसमें वह पूरी तरह से कुचल दिया जाता है, और फ़िर उसमें से सारा रस निकल जाने के बाद उसका शेष भाग खो बन जाता है। फ़िर आप (जल) स्वरूप उस रस को कङाहे में उबाला जाता है। उसके अपने शरीर के रस को आग पर तपाने से गुङ बनता है, और फ़िर उसे और अधिक आँच देकर तपा-तपाकर रगङ-रगङ कर खांड बनायी जाती है। खांड बन जाने पर फ़िर से उसमें ताप दिया जाता है, और फ़िर तब उसमें से जो दाना बनता है, उसे चीनी कहते हैं। चीनी हो जाने पर फ़िर से उसे तपाकर कष्ट देकर मिश्री बनाते हैं।

धर्मदास, मिश्री से पककर 'कंद' कहलाया तो सबके मन को अच्छा लगा। इस विधि से गन्ने की भांति जो शिष्य गुरू की आज्ञा अनुसार आचरण व्यवहार करता हुआ सभी प्रकार के कष्ट-दुख सहन करता है। वह सदगुरू की कृपा से सहज ही भवसागर को पार कर लेता है।

धर्मदास, जीवित रहते हुये मृतकभाव अपनाना बेहद कठिन है, इसे लाखों-करोङों में कोई सूरमा संत ही अपना पाता है जबकि इसे सुनकर ही सांसारिक विषयविकारों में डूबा कायर व्यक्ति तो भय के मारे तन-मन से जलने लगता

है। स्वीकारना अपनाना तो बहुत दूर की बात है, वह डर के मारे भागा हुआ इस ओर (भक्ति की तरफ़) मुड़कर भी नहीं देखता। जैसे गन्ना सभी प्रकार के दुख सहन करता है। ठीक ऐसे ही शरण में आया हुआ शिष्य गुरू की कसौटी पर दुख सहन करता हुआ सबको संवारे और सदा सबको सुख प्रदान करने वाले सर्वहित के कार्य करे।

वह मृतकभाव को प्राप्त गुरू के ज्ञानभेद को जानने वाला मर्मज्ञ साधक शिष्य निश्चय ही सत्यलोक को जाता है। वह साधु सांसारिक कलेशों और निज मन-इन्द्रियों के विषयविकारों को समाप्त कर देता है। ऐसी उत्तम वैराग्य स्थिति को प्राप्त अविचल साधु से सामान्य मनुष्य तो क्या देवता तक अपने कल्याण की आशा करते हैं।

धर्मदास, साधु का मार्ग बहुत ही कठिन है जो साधुता की उत्तम सत्यता, पवित्रता, निष्काम भाव में स्थित होकर साधना करता है, वही सच्चा साधु है। वही सच्चे अर्थों में साधु है जो अपनी पाँचों इन्द्रियों आँख, कान, नाक, जीभ, कामेंद्री को वश में रखता है, और सदगुरू द्वारा दिये सत्यनाम अमृत के दिन-रात चखता है।

लुटेरा कामदेव

कबीर साहब बोले - धर्मदास, साधना करते समय सबसे पहले साधु को चक्षु (आँख) इन्द्रिय को साधना चाहिये, यानी आँखों पर नियंत्रण रखे। वह किसी विषय पर इधर-उधर न भटके। उसे भली प्रकार नियंत्रण में करे, और गुरू के बताये ज्ञानमार्ग पर चलता हुआ सदैव उनके द्वारा दिया हुआ नाम भावपूर्ण होकर सुमरन करे।

पाँच-तत्वों से बने इस शरीर में ज्ञानइन्द्रिय आँख का सम्बन्ध अग्नितत्व से है। आँख का विषय रूप है। उससे ही हम संसार को विभिन्न रूपों में देखते हैं। जैसा रूप आँख को दिखायी देता है, वैसा ही भाव मन में उत्पन्न होता है। आँख द्वारा अच्छा-बुरा दोनों देखने से राग-द्वेष भाव उत्पन्न होते हैं। इस मायारचित संसार में अनेकानेक विषय पदार्थ हैं जिन्हें देखते ही उन्हें प्राप्त करने की तीव्र इच्छा से तन और मन व्याकुल हो जाते हैं, और जीव ये नहीं जानता कि ये विषयपदार्थ उसका पतन करने वाले हैं। इसलिये एक सच्चे साधु को आँख पर नियंत्रण करना होता है।

सुन्दर रूप आँखों को देखने में अच्छा लगता है। इसी कारण सुन्दर रूप को आँख की पूजा कहा गया है, और जो दूसरा रूप कुरूप है, वह देखने में अच्छा नहीं लगता। इसलिये उसे कोई नहीं देखना चाहता। असली साधु को चाहिये कि वह इस नाशवान शरीर के रूप-कुरूप को एक ही करके माने, और स्थूलदेह के प्रति ऐसे भाव से उठकर इसी शरीर के अन्दर जो शाश्वत, अविनाशी, चेतन आत्मा है। उसके दर्शन को ही सुख माने, जो ज्ञान द्वारा 'विदेहस्थिति' में प्राप्त होता है।

धर्मदास, कान इन्द्रिय का सम्बन्ध आकाशतत्व से है, और इसका विषय शब्द सुनना है। कान सदा ही अपने अनुकूल मधुर शुभशब्द को ही सुनना चाहते हैं। कानों द्वारा कठोर, अप्रिय शब्द सुनने पर चित्त क्रोध की आग में जलने लगता है। जिससे बहुत अशांति होकर बैचैनी होती है। सच्चे साधु को चाहिये कि वह बोल-कुबोल (अच्छे-खराब वचन) दोनों को समान रूप से सहन करे। सदगुरू के उपदेश को ध्यान में रखते हुये हृदय को शीतल और शांत ही रखे।

धर्मदास, अब नासिका यानी नाक के वशीकरण के बारे में भी सुनो। नाक का विषय गंध होता है इसका सम्बन्ध प्रथ्वीतत्व से है अतः नाक को हमेशा सुगंध की चाह रहती है। दुर्गंध इसे बिल्कुल अच्छी नहीं लगती। लेकिन किसी भी स्थिरभाव साधक साधु को चाहिये कि वह तत्वविचार करता हुआ इसे वश में रखे, यानी सुगन्ध-दुर्गन्ध में समभाव रहे।

अब जिभ्या यानी जीभ इन्द्रिय के बारे में जानो। जीभ का सम्बन्ध जलतत्व से है और इसका विषय रस है। यह सदा विभिन्न प्रकार के अच्छे-अच्छे स्वाद वाले व्यंजनों को पाना चाहती हैं। इस संसार में छह रस मीठा, कड़वा, खट्टा, नमकीन, चरपरा, कसैला हैं। जीभ सदा ऐसे मधुर स्वाद की तलाश में रहती है।

साधु को चाहिये कि वह स्वाद के प्रति भी समभाव रहे, और मधुर, अमधुर स्वाद की आसक्ति में न पड़े। रूखे-सूखे भोजन को भी आनन्द से गृहण करे। जो कोई पंचामृत (दूध, दही, शहद, घी और मिश्री से बना पदार्थ) को भी खाने को लेकर आये, तो उसे देखकर मन में प्रसन्नता आदि का विशेष अनुभव न करे, और रूखे-सूखे भोजन के प्रति भी अरूचि न दिखाये।

धर्मदास, विभिन्न प्रकार की स्वाद लोलुपता भी व्यक्ति के पतन का कारण बनती है। जीभ के स्वाद के फ़ेर में पड़ा हुआ व्यक्ति सहीरूप से भक्ति नहीं कर पाता, और अपना कल्याण नहीं कर पाता। जबतक जीभ स्वादरूपी कुँए में लटकी है, और तीक्ष्ण विषरूपी विषयों का पान कर रही है, तबतक ह्रदय में राग-द्वेष मोह आदि बना ही रहेगा, और जीव सत्यनाम का ज्ञान प्राप्त नहीं कर पायेगा।

धर्मदास, अब में पाँचवी काम-इन्द्रिय यानी जननेन्द्रिय के बारे में समझाता हूँ इसका सम्बन्ध जलतत्व से है। जिसका कार्य मूत्र, वीर्य का त्याग और मैथुन करना होता है। यह मैथुनरूपी कुटिल विषयभोग के पापकर्म में लगाने वाली महान अपराधी इन्द्री है जो अक्सर इंसान को घोर नरकों में डलवाती है। इस इन्द्री के द्वारा जिस दुष्टकाम की उत्पत्ति होती है। उस दुष्ट प्रबल कामदेव को कोई बिरला साधु ही वश में कर पाता है।

कामवासना में प्रवृत करने वाली कामिनी का मोहिनीरूप भयंकर काल की खानि है। जिसका ग्रस्त जीव ऐसे ही मर जाता है, और कोई मोक्षसाधन नहीं कर पाता अतः गुरू के उपदेश से कामभावना का दमन करने के बजाय भक्ति उपचार से शमन करना चाहिये।

(यहाँ बात सिर्फ़ औरत की न होकर, स्त्री-पुरूष में एक-दूसरे के प्रति होने वाली कामभावना के लिये है क्योंकि मोक्ष और उद्धार का अधिकार स्त्री-पुरूष दोनों को ही समान रूप से है अतः जहाँ कामिनी-स्त्री पुरूष के कल्याण में बाधक है, वहीं कामीपुरूष भी स्त्री के मोक्ष में बाधा समान ही है।

कामविषय बहुत ही कठिन विकार है, और संसार के सभी स्त्री-पुरूष कहीं न कहीं कामभावना से ग्रसित रहते हैं। कामअग्नि देह में उत्पन्न होने पर शरीर का रोम-रोम जलने लगता है। कामभावना उत्पन्न होते ही व्यक्ति की मन, बुद्धि से नियंत्रण समाप्त हो जाता है। जिसके कारण व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक पतन होता है।) धर्मदास, कामी, क्रोधी, लालची व्यक्ति कभी भक्ति नहीं कर पाते। सच्ची भक्ति तो कोई शूरवीर संत ही करता है जो जाति, वर्ण और कुल की मर्यादा को भी छोड़ देता है।

कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करे कोई सूरमा, जातिवर्ण कुल खोय।

काम, जीवन के वास्तविक लक्ष्य मोक्ष के मार्ग में सबसे बढ़ा शत्रु है अतः इसे वश में करना बहुत आवश्यक ही है। धर्मदास, इस कराल विकराल काम को वश में करने का अब उपाय भी सुनो। जब काम शरीर में उमङता हो, या कामभावना बेहद प्रबल हो जाये, तो उस समय बहुत सावधानी से अपने आपको बचाना चाहिये। इसके लिए स्वयं के विदेहरूप को या आत्मस्वरूप को विचारते हुये सुरति (एकाग्रता) वहाँ लगायें, और सोचें कि मैं ये शरीर नहीं हूँ, बल्कि मैं शुद्धचैतन्य आत्मस्वरूप हूँ, और सत्यनाम तथा सदगुरू (यदि हों) का ध्यान करते हुये विषैले कामरस को त्याग कर सत्यनाम के अमृतरस का पान करते हुये इसके आनन्ददायी अनुभव को प्राप्त करे।

काम, शरीर में ही उत्पन्न होता है, और मनुष्य अज्ञानवश स्वयं को शरीर और मन जानता हुआ ही इस भोगविलास में प्रवृत होता है। जब वह जान लेगा कि वह पाँच-तत्वों की बनी ये नाशवान जङदेह नहीं है, बल्कि विदेह, अविनाशी, शाश्वत, चैतन्य आत्मा है, तब ऐसा जानते ही वह इस कामशत्रु से पूरी तरह से मुक्त ही हो जायेगा।

मनुष्य शरीर में उमङने वाला, ये कामविषय अत्यन्त बलवान और बहुत भयंकर कालरूप महाकठोर और निर्दयी है। इसने देवता, मनुष्य, राक्षस, ऋषि, मुनि, यक्ष, गंधर्व आदि सभी को सताया हुआ है, और करोङों जन्मों से उनको लूटकर घोर पतन में डाला है, और कठोर नर्क की यातनाओं में धकेला है। इसने किसी को नहीं छोङा सबको लूटा है। लेकिन जो संत, साधक अपने ह्रदयरूपी भवन में ज्ञानरूपी दीपक का पुण्यप्रकाश किये रहता हो, और सदगुरू के सारशब्द उपदेश का मनन करते हुये सदा उसमें मग्न रहता हो। उससे डरकर ये कामदेवरूपी चोर भाग जाता है।

जो विषया संतन तजी, मूढ़ ताहे लपटात।
नर ज्यों डारे वमन कर, श्वान स्वाद सो खात।

कबीर साहब ने ये दोहा नीचकाम के लिये ही बोला है। इस कामरूपी विष को जिसे संतों ने एकदम त्यागा है मूर्ख मनुष्य इस काम से उसी तरह लिपटे रहते हैं जैसे मनुष्यों द्वारा किये गये वमन यानी उल्टी को कुत्ता प्रेम से खाता है।

आत्मस्वरूप परमात्मा का वास्तविक नाम ‘विदेह’ है

कबीर साहब बोले - धर्मदास, जबतक देह से परे, विदेहनाम का ध्यान होने में नहीं आता, तबतक जीव इस असार संसार में ही भटकता रहता है। विदेहध्यान और विदेहनाम इन दोनों को अच्छी तरह से समझ लेता है तो उसके सभी संदेह मिट जाते हैं।

जबलग ध्यान विदेह न आवे, तबलग जिव भव भटका खावे।
ध्याननविदेह और नामविदेहा, दोउ लखि पावे मिटे संदेहा।

मनुष्य का पाँच-तत्वों से बना यह शरीर जड़, परिवर्तनशील तथा नाशवान है। यह अनित्य है। इस शरीर का एक नाम-रूप होता है परन्तु वह स्थायी नहीं रहता। राम, कृष्ण, ईसा, लक्ष्मी, दुर्गा, शंकर आदि जितने भी नाम इस संसार में बोले जाते हैं, ये सब शरीरी नाम हैं, वाणी के नाम हैं।

लेकिन इसके विपरीत इस जड़ और नाशवान देह से परे उस अविनाशी, चैतन्य, शाश्वत और निज आत्मस्वरूप, परमात्मा का वास्तविक नाम विदेह है, और ध्वनिरूप है। वही सत्य है, वही सर्वोपरि है अतः मन से सत्यनाम का सुमरन करो।

वहाँ दिन-रात की स्थिति तथा प्रथ्वी, अग्नि, वायु आदि पाँच-तत्वों का स्थान नहीं है। वहाँ ध्यान लगाने से किसी भी योनि के जन्म-मरण का दुख जीव को प्राप्त नहीं होता। वहाँ के सुख आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता। जैसे गूँगे को सपना दिखता है, वैसे ही जीवित जन्म को देखो। जीते जी इसी जन्म में देखो।

धर्मदास, ध्यान करते हुये जब साधक का ध्यान क्षणभर के लिये भी 'विदेह' परमात्मा में लीन हो जाता है तो उस क्षण की महिमा आनन्द का वर्णन करना असंभव ही है। भगवान आदि के शरीर के रूप तथा नामों को याद करके सब पुकारते हैं परन्तु उस विदेहस्वरूप के विदेहनाम को कोई बिरला ही जान पाता है।

जो कोई चारो युगों सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग में पवित्र कही जाने वाली काशी नगरी में निवास करे। नैमिषारण्य, बद्रीनाथ आदि तीर्थों पर जाये और गया, द्वारका, प्रयाग में स्नान करे। परन्तु सारशब्द (निर्वाणी नाम) का रहस्य जाने बिना वह जन्म-मरण के दुख और बेहद कष्टदायी यमपुर में ही जायेगा, और वास करेगा। धर्मदास, चाहे कोई अड़सठ तीर्थों मथुरा, काशी, हरिद्वार, रामेश्वर, गंगासागर आदि में स्नान कर ले। चाहे सारी प्रथ्वी की परिकृमा कर ले परन्तु सारशब्द का ज्ञान जाने बिना उसका भ्रम, अज्ञान नहीं मिट सकता।

धर्मदास, मैं कहाँ तक उस सारशब्द के नाम के प्रभाव का वर्णन करूँ, जो उसका हंसदीक्षा लेकर नियम से उसका सुमरन करेगा। उसका मृत्यु का भय सदा के लिये समाप्त हो जायेगा। सभी नामों से अदभुत सत्यपुरूष का सारनाम सिर्फ़ सदगुरू से ही प्राप्त होता है। उस सारनाम की डोर पकड़कर ही भक्तसाधक सत्यलोक को जाता है। उस सारनाम का ध्यान करने से सदगुरू का वह हंसभक्त पाँच-तत्वों से परे परमतत्व में समा जाता है, अर्थात वैसा ही हो जाता है।

विदेहस्वरूप सारशब्द

कबीर साहब बोले - धर्मदास, मोक्ष प्रदान करने वाला सारशब्द विदेहस्वरूप वाला है, और उसका वह अनुपमरूप निःअक्षर है। पाँच-तत्व और पच्चीस प्रकृति को मिलाकर सभी शरीर बने हैं परन्तु सारशब्द इन सबसे भी परे विदेहस्वरूप वाला है। कहने-सुनने के लिये तो भक्तसंतों के पास वैसे लोकवेद आदि के कर्मकांड, उपासना कांड, ज्ञानकांड, योग, मंत्र आदि से सम्बन्धित सभी तरह के शब्द हैं लेकिन सत्य यही है कि सारशब्द से ही जीव का उद्धार होता है। परमात्मा का अपना सत्यनाम ही मोक्ष का प्रमाण है, और सत्यपुरूष का सुमिरन ही सार है।

बाहयजगत से ध्यान हटाकर अंतर्मुखी होकर शांतचित्त से जो साधक इस नाम के अजपा जाप में लीन होता है,

उससे काल भी मुरझा जाता है। सारशब्द का सुमरन सूक्ष्म और मोक्ष का पूरा मार्ग है। इस सहज मार्ग पर शूरवीर होकर साधक को मोक्षयात्रा करनी चाहिये।

धर्मदास, सारशब्द न तो वाणी से बोला जाने वाला शब्द है, और न ही उसका मुँह से बोलकर जाप किया जाता है। सारशब्द का सुमरने करने वाला काल के कठिन प्रभाव से हमेशा के लिये मुक्त हो जाता है। इसलिये इस गुप्त आदिशब्द की पहचान कराकर इन वास्तविक हंसजीवों को चेताने की जिम्मेवारी तुम्हें मैंने दी है।

धर्मदास, इस मनुष्यशरीर के अन्दर, अनन्त पंखुडियों वाले कमल हैं, जो अजपा जाप की इसी डोरी से जुडे हुये हैं। तब उस बेहद सूक्ष्मद्वार द्वारा मन-बुद्धि से परे, इन्द्रियों से परे, सत्यपद का स्पर्श होता है, यानी उसे प्राप्त किया जाता है। शरीर के अन्दर स्थित, शून्यआकाश में अलौकिकप्रकाश हो रहा है, वहाँ 'आदिपुरूष' का वास है। उसको पहचानता हुआ कोई सदगुरू का हंससाधक वहाँ पहुँच जाता है, और आदिसुरति (मन, बुद्धि, चित्त, अहम का योग से एक होना) वहाँ पहुँचाती है। हंसजीव को सुरति जिस परमात्मा के पास ले जाती है उसे 'सोऽहंग' कहते हैं।

अतः धर्मदास, इस कल्याणकारी सारशब्द को भलीभांति समझो। सारशब्द के अजपा जाप की यह सहज धुनि अंतरआकाश में स्वतः ही हो रही है अतः इसको अच्छी तरह से जान-समझ कर सदगुरू से ही लेना चाहिये। मन तथा प्राण को स्थिर कर मन तथा इन्द्रिय के कर्मों को उनके विषय से हटाकर सारशब्द का स्वरूप देखा जाता है। वह सहज स्वाभाविक 'ध्वनि' बिना वाणी आदि के स्वतः ही हो रही है। इस नाम के जाप को करने के लिये, हाथ में माला लेकर जाप करने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। इस प्रकार विदेह स्थित में इस सारशब्द का सुमरन हंससाधक को सहज ही अमरलोक, सत्यलोक पहुँचा देता है।

सत्यपुरूष की शोभा अगम, अपार, मन-बुद्धि की पहुँच से परे है। उनके एक-एक रोम में करोडों सूर्य चन्द्रमा के समान प्रकाश है। सत्यलोक पहुँचने वाले एक हंसजीव का प्रकाश सोलह सूर्य के बराबर होता है।

समाप्त

बहुत दिनन तक थे हम भटके, सुनि सुनि बात बिरानी।
जब कछुबात उर में थिर भयी, सुरतिनिरति ठहरानी।
रमता के संग समता हुय गयी, परो भिन्न पै पानी।

हँसदीक्षा, परमहँस दीक्षा, समाधिदीक्षा, शक्तिदीक्षा, सारशब्द दीक्षा, निःअक्षर ज्ञान, विदेहीज्ञान, सहजयोग, सुरतिशब्द योग, नादबिन्द योग, राजयोग और उर्जात्मक 'सहजध्यान' पद्धति के वास्तविक और प्रयोगात्मक अनुभव सीखने, समझने, होने हेतु सम्पर्क करें।